भारत के साहसी वीरों की गाथाएँ

वीरेन्द्र मोहन रतूडी

किशोरोपयोगी उपन्यास

पूपू : समुद्री प्राणियों के अद्भुत जीवन पर आधारित

गौतम बुद्ध : महात्मा बुद्ध के जीवन पर आधारित

जय भवानी : शिवाजी के जीवन पर आधारित

बाजीराव पेशवा : बाजीराव पेशवा के जीवन पर आधारित

सम्राट् शिलादित्य : एक ऐतिहासिक गाथा पर आधारित

चित्तौडगढ़ की रानी : रानी पद्मिनी के जीवन पर आधारित

गढ़मण्डल को रानी : रानी दुर्गावती के जीवन पर आधारित

रूपा और लल्ली : चींटियों के अद्भुत जीवन पर आधारित

बाघ का शिकार : बाघ के शिकार पर आधारित एक साहसिक गाथा

खूब लडी मर्दानी : महारानी लक्ष्मीबाई के जीवन पर आधारित

सम्राट् अशोक : सम्राट् अशोक के जीवन पर आधारित

मीरां बावरी : मीरांबाई के जीवन पर आधारित

हल्दी घाटी : राणा प्रताप के जीवन पर आधारित

किशोरोपयोगी कहानियाँ

भारत के साहसी वीरों की गाथाएँ : वीर रस से पूर्ण भारतीय कहानियाँ

देश-देश की परियाँ भारत आाईं : संसार की रोचक लोक-कथाओं का संग्रह

रंग-बिरंगी परियाँ : चुनी हुई रोचक लोक कथाओं का संग्रह

राष्ट्रवीर शिवाजी महाराज का युद्ध कौशल: परमवीर चक्र प्राप्त सैनिक पीरूसिंह का अपूर्व साहस; सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की असाधारण वीरता ; सुभाषचन्द्र बोस का अँग्रेजों के झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की महाराणा प्रताप का हल्दी घाटी हरिसिंह नलवा का सिह से चक्रव्यूह को तोडना ; तलवार का जौहर; में भयंकर युद्ध ; साहसपूर्ण सामना ; अर्जुन का स्वयं प्रलयंकर बनकर प्रलय मचा देना ;

शेरपा तेज़िंग की अजेय एवरेस्ट पर विजयः वीर मराठा तानाजी का अभूतपूर्व बलिदान ; **ये हैं भारत के साहसी वीरों की गाथाएँ।**

विषय-सूची

क्रम	कहानी	पृष्ठ संख्या
१.	बाँकुरे, घूंघट की ओट	९
२.	सिपाही की विदाई	१५
३.	जीत की हार	२२
४.	म्यान से बाहर	३२
५.	खूब लड़ी मर्दानी	३७
६.	राजपूत का प्रतिशोध	४४
७.	एक शिकार : दो खूंखार	५२
८.	वह प्रलयंकर शंकर बन गया	५७
९.	एवरेस्ट पर पहला कदम	६३
१०.	प्राणों की दक्षिणा	६९

बांकुरे पूंपट की ओट

"कौन लोग हो तुम ?"

"मराठे ।"

"कहाँ को बारात है ?"

"अमर गाँव की ।"

"कहाँ जाएगी ?"

"सूरत ।"

"कितने बराती हैं ?"

"बस जी यही एक सौ बराती, बीस-तीस कहार, इतने ही बाजे-गाजे वाले, मशालची भी होंगे तीसेक, एक दूल्हा, माँ-बाप भी साथ हैं, भाइयों ने बहुत हठ किया पाँचों चले आये, चाचा-फूफा-ताऊ, भांजा, भतीजा- बस जी दो सौ से बढ़ती एक भी नहीं।"

"रात को इतने आदमी शहर में दाखिल होने मनह हैं। आप लोगों को वापिस जाना होगा।"

"दूर की बारात है हजूर ! भोंसलों को तो आप जानते ही हैं- वही शराब के ठेकेदार हैं जो दरबार तक रसद पहुंचती है.."

"शराब के ठेकेदार ?"

"जी हाँ, एक नम्बर की शराब निकालते हैं लीजिये आप भी नोश फरमाइये न । भिखुआ ! अरे भिखुआ !.

बस, एक भार शराब । कोतवाल राजी हो गया। अब बारात जा सकती है। रास्ते में सिपाहियों की गश्त थी। दस-बीस रुपल्ली में वहाँ भी सौदा पट गया। आगे पहरेदारों ने जरूर अड्चन डाली। शाइस्ताखाँ के खास

आदमी थे वे। बस एक बार जो मुह से 'न' निकली तो, अङ गये। बात तक न सुनते थे।

वही नाटा पर गठीला जवान बरातियों में से आगे बढ़ा। तलवार का एक ही झपका लगाया। दोनों पहरेदार जमीन चाटते नजर आये। "तुम्हारा यही इलाज है। बहिश्त में पहुंच कर अपने मालिक के लिए भी जगह रख लेना। वह भी पीछे-पीछे आता ही होगा।" उस मँझोले जवान की आँखों से रोब टपकता था और जबान से दृढ़ता। एक इशारा हुआ। पहरेदारों की वदियाँ उतार ली गई और गीदङों की दावत के लिए उनके शव खड्डु में धकेल कर बारात आगे चलती बनी।

शहर के बङे फाटक पर दरबानों का पहरा था। बारात को वे घूरते रहे पर वर्दी में दो शाही पहरेदारों को साथ देखकर, किसी ने पूछा तक नहीं। बारात शान से सूरत में दाखिल हो गई।

बराती भी परदेशी मालूम होते थे-होंगे पास-पङोस के किसी गाँवङ के। किराये की हवेली मे डेरा था पर क्या मजाल कि अगुआनी में कहीं भी जरा-सी भी चूक रही हो। शहर के नवाब का महल ठीक सामने था। हवेली की रंगीनियों के आगे वह पानी भरता दिखाई दिया।

तब तक रात काफी भीग चुकी थी लेकिन भोंसलों की दावत का रंग और भी जमता जा रहा था। दावत में रंगीले नगर सूरत के अनेक सरकारी और गैर-सरकारी अतिथि मौजूद थे। सारा हाल रंगबिरंगी बत्तियों और शमादानों से जगमगा रहा था। चारों तरफ रंगीन शराब का दौर चल रहा था, सब लोग खुशी से पागल हुए जा रहे थे। जाम पर जाम चल रहा था। सूरत वालों को पहली बार ऐसी शानदार पार्टी नसीब हुई थी। शाही मेहमानों में खुद नवाब के नुमाइन्दे कसम खाते थे कि ऐसी मेहमाननवाजी न कभी देखी और न देखने को मिलेगी।

अचानक संगीत की मादक लय से रात का वातावरण थिरक उठा। नर्तकियाँ मधुर ताल पर नृत्य करने लगीं। शीशे से उजले फर्श पर हल्के-हल्के कदम बङी सफाई से उठ रहे थे और गायिका का स्वर उठान भर रहा था-

"गोरी, सो मत जइयो री ! तोहे जाना है पी की नगरिया, री !"

नाच का दूसरा दौर जब शुरू होने लगा तो चाँद को काले बादलों ने अपने आँचल में छिपा लिया था। सहसा नर्तकी के कदम उतावले-से हो उठे और गायिका का स्वर तीखा -

तोहे जाना है पी की नगरिया री।
तज घूंघट, दे रख पायल, उठ चल दे बाँध कमरिया री।

सहसा संगीत की मधुर तानें थम गईं; 'तज घूंघट' कहते-कहते नर्तकी ने सिर का आँचल पटक डाला, केशपाश नोच डाले और घरिया झटक फेंकी। और बीच में से निकल पड़ा एक मराठा जवान, कमर में कटार और हाथों में ढाल। अब उसने कोमल बाहों के बदले नंगी तलवार हवा में लहराते हुए गाया -

"तज घूंघट" मानो कमांडर का आदेश था। क्षण-भर में बरातियों ने चमकीली पोशाकें उतार फेंकी। सजे-सजीले सैंकड़ों सिपाही प्रकट हो गये।

"दे रख पायल" जो-कुछ जहाँ था उसे वहीं पटक कर एक-एक साव- धान हो गया।

"उठ चल दे बाँध कमरिया" सुनते ही मराठा वीरों ने शाही मेहमानों की मुरकें बाँध दीं और स्वयं पलक झपकाते ही अंधेरे में गायब हो गये। सामने महल था, पहुंचते कितनी देर लगती थी। एक पहुंचा, दूसरा घोड़ा बना, तीसरे ने उसकी पीठ पर खड़े होकर दीवार फाँदी, फिर चौथा, पाँचवाँ, छटा कूदा। एक पहरेदार ऊंघ रहा था, उसे सदा की नींद सुला दिया, दूसरा चौंका, उसके पेट में छुरा घोंप दिया। गेट खुल गया, सैकड़ों मराठे बंदरों-लंगूरों की तरह दाएँ-बाएँ, आगे-पीछे महल पर लपक पड़े। जिसे दरवाजा दिखाई दिया वह दरवाजे से दाखिल हुआ, जिसे खिड़की खुली मिली वह उसी में से कूद पड़ा। कोई जीने से उतरा, कोई आँगन से। कोई अगाड़ी से घुसा, कोई पिछाड़ी से। यह सब इस फुर्ती से हुआ कि सोने वालों को करवट लेने की भी फुर्सत न मिली और मराठे उनके सिर पर आ धमके। "हरहर महादेव !" "मारो-मारो, काटो-काटो !"

"शिवाजी आ गये !"
"तोबा-तोबा !"
"हाय, मैं मर गई !"
"खून, खून !"
"हाय, मराठे !"
"शिवाजी की जय !"
"एक-एक को सुला दो !"

"शाइस्ताखाँ कहाँ है ?"

रंग-रंग की आवाजों से नवाब का महल गूंज उठा। चीत्कार, हाहा- कार के सिवा कुछ सुनाई नहीं देता था। जिधर देखो, दौङ-धूप, मार-काट, लपक-झपक, कूदा-फाँदी, गुत्थम-गुत्था, बत्त यही दृश्य थे। अंधकार में कुछ दिखाई नहीं देता था। कितने ही मराठे बाएँ हाथ में मशाल और दाहिने में तलवार लेकर लङ रहे थे। अभी यहाँ, अभी वहाँ, अभी नीचे, अभी ऊपर, - एक-एक मराठा कूद-कूदकर लङ रहा था। दाँत पीस-पीसकर वे लङ रहे थे। एक की टाँग टूटी, वह एक ही टाँग से कूद रहा था। दूसरे की ढाल गिर गई, उसने एक पठान की खोपङी ही हाथ में थाम ली थी।

शिवाजी अलग ही प्रलय मचा रहे थे। उनकी आँख शाइस्ताखाँ पर थी। पर वह नदारद, न यहाँ, न वहाँ। शिकार हाथ न लगते देखकर शिवाजी आगबबूला हो उठे थे। वे मुगल सिपाहियों की काँट-छाँट में वक्त बरबाद नहीं करना चाहते थे। पर निगोङे मुगल मरने को दौङ-दौङकर उनके सामने स्वयं ही पहुंच जाते। शिवाजी की तलवार एक-एक पर गिरती जाती और उन्हें यम-लोक का रास्ता दिखाती जाती। फिर वे बेतहाशा दौङ पङते। शाइस्ताखाँ कहाँ है ?

शाइस्तार्खा ने देखा मराठों से आज बच निकलना मुश्किल है, उसने भागने में ही बहादुरी दिखाई। एक खिङकी खुली थी, वह उसी ओर

लपका। आगे एक मराठा खड्ग था। वह उल्टे पाँव लौटा, जीने से नीचे की ओर भागा। आगे एक मराठा एक मुगल की छाती में कृपाण घुसेड कर गोल घुमा रहा था। शाइस्ताखाँ आँख मींच कर फिर इधर लौटा। रास्ते में रानियों के कमरे थे। बचाओ, बचाओ, दुहाई, दुहाई से दीवारें फट रही थीं। जरूर यहाँ भी मराठे होंगे। खाँ की नज़र बरामदे पर पडी। उधर कोई नहीं था। दाएँ देखा, बाएँ देखा, कोई नहीं दीख रहा था। सामने खिड्की भी खुली पडी है। वह लपका कि कूद पड़।

शाइस्ताखाँ ने खिड्की पकडी, टाँगें लटकाई, ऊँच-नीच देख ही रहा था कि शिवाजी आ धमके। उधर शाइस्ताखाँ ने छलाँग लगाई, इधर शिवाजी ने तलवार चलाई। शाइस्ताखाँ कूद गया पर तलवार उसके हाथ पर पडी। बहुत नहीं केवल तीन अंगुलियाँ कट गई। 'हर-हर महादेव', 'छत्रपति शिवाजी की जय' के नारों से सूरत का वातावरण गूंज उठा।

उधर प्रभात ने ऊषा की माँग में सिंदूर भरा, इधर मराठों का दूल्हा विजयश्री को व्याह कर ले चला।

आज सन् १९४८ की जुलाई की १७ तारीख है।

संध्या का समय है। दिन की कमर टूट चुकी है। सूर्य कभी का पहाड़ियों की ओट में मुँह छिपा चुका है। तिल-तिल कालिमा बढ़ती जा रही है। सामने टीटवाल की दक्षिणी पहाड़ी की हरियावल एक दम साँवली हो चली है। यह वही पहाड़ी है जहाँ कुछ ही घंटों में काश्मीर के भविष्य का फैसला होने वाला है। कुछ ही देर बाद यहाँ की धरती सैनिकों के रक्त से रंजित हो जायेगी। चीत्कारों और उत्साह-भरी हुंकारों से टीटवाल का शांत वातावरण सहस । चिहुंक उठेगा। ऊँट किस करवट बैठेगा इस पर भारत की चवालीस करोड़ जनता की आँखें लगी हुई हैं। यहाँ बैठे-बैठे दूरबीन से मुझे सब-कुछ स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

पहाड़ी के शिखर पर पाकिस्तानी कबाइलियों का तगड़ा मोर्चा है। दिन भर ऊपर-नीचे उनकी अच्छी-खासी दौड़-धूप रही। चोटी से एड़ी तक और फिर एड़ी से चोटी तक बन्दूकचियों की गश्तें हुई, पहरे बदले, झाड़ी-झाड़ी की छानबीन हुई, पेड़-पेड़ की तलाशी हुई। पर अब दिन की चहल-पहल एकदम शान्त हो गई है। कबाइली सेना भी सूर्य की किरणों के साथ सिकुड़ कर पहाड़ी के उस पार चली गई है। अब पगडंडियाँ शान्त हैं। पहाड़ी एकदम सुनसान हो चली है।

पर अब पहाड़ी के नीचे कुछ हलचल आरम्भ हो गई है। पहचानना कठिन नहीं कि भारतीय सिपाहियों की ही एक टुकड़ी के जवान हैं ये । गिनती में कितने होंगे, इस झुटपुटे में ठीक नहीं कहा जा सकता। पर हैं थोड़े, बहुत थोड़े-कबाइलियों के मुकाबले में बस मुट्ठी भर। वे दबे पाँव ऊपर की और सरकते जा रहे हैं, धीरे-धीरे, चुपके-चुपके। कुछ झाड़ियों के पीछे, कुछ

तने की आड में, कुछ खडे हैं, कुछ रेंग रहे हैं। राजपूताना राइफ़ल्ज़ के सिपाही हैं ये !

उनसे कोई दस गज ऊपर एक बाँका जवान बडी सतर्कता से चला जा रहा है। निश्चय ही वह कम्पनी का नेता है- मेजर पीरूसिंह। वह फूंक-फूंक कर कदम रख रहा है। उसके संकेतों पर सारी सेना कभी रुक कर, कभी झुक कर और कभी लपक कर आगे बढ़ रही है। पर वे सहसा रुक क्यों गये ? हूं समझा ! दुश्मन के मोर्चे से टार्च की तेज रोशनी ठीक हमारे सिपाहियों के सामने चमक कर घूम गई है। शायद शत्रु को कुछ शक हो गया है। सम्भव है उन्होंने आहट पा ली हो। अब टार्चें एक से अनेक होकर चमकने लगी है, दायें-बायें, ऊपर-नीचे। लो, एक टार्च की रोशनी वहीं जाकर जम गई है जहाँ अभी हमारे सिपाही थे। पर अब वे कहाँ हैं? एक भी तो दिखाई नहीं देता। टार्च व्यर्थ ही कोने-कोने में झाँक रही है। हमारे सिपाही अवश्य दुबक गये होंगे। हो सकता है किसी कंदरा में दुबक गये हों। शाबाश, खूब चकमा दिया दुश्मन को।

हू! हू! यह तो गीदडों के रोने की आवाज है। ठीक समय पर प्रकट हुई है इनकी मंडली। आज गीदडों ने भी हमारे जवानों का समय पर खूब साथ दिया है। "अरे ये तो गीदड हैं। निगोडों ने नींद हराम कर दी" - कह कर शत्रु के सिपाही फिर मोर्चे में वापिस लौट गये हैं। टार्चों ने भी पलक मूंद ली हैं। केवल आकाश में तारे झाँक रहे हैं। दूर के किसी घडियाल ने दो बजा दिये।

आधी रात बीत चुकी है। प्रभात होने में केवल दो पहर शेष हैं। कुछ काली-काली धूमिल छायाएँ पहाडी पर रेंगती हुई-सी दिखाई दे रही हैं। अवश्य वे हमारे सिपाही होंगे। हाँ, वही हैं वे। अब वे फिर खुले में निकल आये हैं। आंख मिचौनी से काम नहीं चलेगा। अब वे खुलकर आगे बढ़ रहे हैं। योजना के अनुसार अपना-अपना स्थान संभाल लिया है सबने। काफी लम्बा-चौडा क्षेत्र सैनिकों से भर गया है। मोटे तौर पर वे दो भागों में बंट गये हैं। एक भाग दाईं ओर से ऊपर की ओर लपक रहा है। दूसरा भाग पीरूसिह के पीछे है और घडा-घड आगे बढ़ा जा रहा है।

खटाखट ! पटापट ! धमाधम ! कडड, कुड-कड ! शायद शत्रु भी चौकस हो गये हैं। ऊपर मोर्चे में भी बौखलाहट मच गई है।

"पहाडी के ऊपरी भाग पर शत्रु पूरी तरह जाग चुका है" एक

सरदार ने ललकारा। "वह जल्दी ही यमपुर का अतिथि होगा।" पीरूसिंह का संक्षिप्त उत्तर है।

हाँ ! तो अब इन्हें विलम्ब नहीं करना चाहिए। आज्ञा की ही तो देरी है। लो, सैनिक आगे बढ़े। उनकी गति बडी तीव्र है। पल भर में ही वे लक्ष्य पर पहुंचने वाले हैं। पर नहीं, शत्रु की मशालें धधक उठी हैं। टार्च और सर्चलाइट के तीखे प्रकाश में हमारे सिपाही इतने स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं कि उन का बाल-बाल गिना जा सकता है। ऊपर से गोलियों की बौछार आई। अब रेंगना व्यर्थ है। उठ खडे हुए।

'जय हिन्द' का नारा लगाया और बरसती हुई गोलियों में भैंस गये हमारे जवान। दोनों ओर से गोलियों की बौछार आरम्भ हो गई। मोर्चे की तोपें हिन्दुस्तानी जवानों का विध्वंस करने लगी हैं। गोला-बारी की बाढ़ में हमारे सिपाही बार-बार आगे बढ़ने का यत्न कर रहे हैं परन्तु गोलों की मार आगे नहीं बढ़ने देती। ऊपर आग बरस रही है, नीचे हमारे जवान लोहे की बाड तोड रहे हैं। एक को गोली लगती है, वह मर जाता है तो दूसरा उसके स्थान पर हथियार पकड कर कटाकट कंटीली-तार को काटने लग जाता है। बीर सिपाहियों ने प्राणों की बाजी लगा रखी है। लाशों के ढेर लग गये हैं परन्तु सेना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकी। हमारे जवानों की भयंकर क्षति हुई है।

मुर्गे ने पहली बाँग दे दी है। प्रभात होने ही वाली है। आकाश में उजाला फूट निकला है। पीरूसिंह ने पैंतरा बदल दिया है। अब वह चुने हुए जवानों को साथ लेकर अँधेरे में आगे बढ़ने लगा है। पर मोर्चे की सेना इधर भी सावधान है। उसकी नज़रों से ये न बच सके। इधर भी गोलियाँ आने लगी हैं पर ये प्राण हथेली पर लिए ऊपर चढ़े जा रहे हैं। ऊपर से तोपें नीचे से बंदूकें गरज रही हैं। गोलों के शब्द से कान फटते हैं और भूमि काँपती है।

आखिर शत्रु की रक्षापंक्ति टूट ही गई, और हमारे सिपाही मोर्चे के निकट पहुंच ही गये। अब दोनों और के सिपाही एक-दूसरे से भिड गये हैं। पीरूसिंह साक्षात् यम के समान लड रहा है। वह कबाइलियों पर अकेला ही इस तरह टूटता है जैसे बाज कबूतरों पर। बिजली की तरह उसकी बंदूक चारों ओर घूमती है। कब वह गौली भरता, कव घोडा दबाता और

कब निशाना लगाता है, अनुमान लगाना कठिन है। लो, उधर के सिपाही भागने की राह देख रहे हैं। पीरूसिंह सिंह की तरह उन पर झपटा और दो- एक को संगीन से दबोच लिया। शेर के शिकंजे में आया शिकार कब छूट सकता है।

अब दूध-सा उजला प्रभात निखर आया है। कबाइलियों का मोर्चा हलचल का केन्द्र बन गया है। ऐसा लग रहा है जैसे उनकी योजना सफल होती जा रही है। उनके संकेतों से प्रतीत होता है जैसे वे शीघ्र ही कोई बडी चाल चलना चाहते हैं।

लो, इसी समय एक अद्भुत घटना घटी। पीसिंह बेतहाशा मोर्चे की ओर भाग खडा हुआ है। एक सैनिक ने उसे टोका-"मत जाओ ऊपर मेजर साहिब ! दुश्मन की संख्या बहुत अधिक है। जान का खतरा है !"

"सिपाही जान की परवाह नहीं करता। आखिर मरना तो एक दिनः • है ही।" पीसिंह का एक ही उत्तर है। यह कहकर वह और ऊपर चढ़ने लगा । साथियों ने रोका पर वह नहीं रुका। वे उसके पीछे हो लिए पर उसकी तीव्र गति का साथ नहीं दे पा रहे। पीरूसिंह भयंकर वेग से ऊपर चढ़ा चला जा रहा है। आंधी में कितनी शक्ति होती है। बिजली में कितनी गति होती है। पीरूसिंह की गति भी आज कुछ वैसी ही है।

तोपों के सामने उस का सीना खुला है। वह अब भी आगे बढ़ने की कोशिश कर रहा है, मानो वह किसी ऐसे स्थान पर जा रहा हो जहाँ से लौटने की उसकी इच्छा नहीं, आशा भी नहीं। पीछे घूम कर भी नहीं देखा उसने कि कोई साथी भी साथ है या नहीं।

धाँय ! दनदनाती हुई एक गोली आई और मेजर पीसिंह के शरीर के आरपार निकल गई। लहू का फव्वारा छूट पङा है, पर क्या मजाल कि मेजर की चाल रत्ती भर भी धीमी पङी हो। उल्टे वह चोट खाए सांप की तरह और भी उग्र हो उठा है और भयंकर वेग से मोर्चे को लक्ष्य करके दौङ रहा है। उधर ही से गोलियाँ आ रही हैं। आने दो उसे परवाह नहीं ।

नेता के इस साहस से सिपाहियों के अंग-अंग में बिजली दौङ गई है और वे प्राणों का मोह छोङ कर शत्रु पर छा जाने के लिए भाग पङे हैं। शायद वे अपने मेजर को गोलियों की बौछार से बचा सकें ।

पर पीरूसिंह ! वह तो मोर्चे की ओर बढ़ता ही जा रहा है, अकेला निपट अकेला । सब पिछङ गये हैं उससे। वह प्रलयंकर शंकर हो उठा है आज। जिघर से गोलियों की बौछार आ रही है ठीक उसी ओर बढ़ता जा रहा है वह जैसे आज उसे गोलियों से प्यार हो गया हो। उनकी मार से उसका रोम-रोम छलनी हो गया है। अंग-अंग से लहू के फव्वारे छूट रहे हैं। पर अब उसे शरीर की चिंता नहीं रही। वह शत्रु पर टूट पङा है।

लो, वह अब शिखर पर पहुँच गया है। ठीक यहीं, बिल्कुल यहीं है मोर्चा शत्रु का। कबाइली चारों ओर से निकल आये हैं। दाँतों में जीभ की तरह पीरूसिंह शत्रु-दल में घिर गया है। अब सोचने का समय नहीं। वह क्षण-भर भी चुका तो दुश्मन की गोलियाँ उसे भून डालेंगी, आग की लपटें निगल जाएँगी ।

उफ़ ! वह एक खंदक पर कूद पङा है, उस पर क्या बीतेगी, वह जियेगा

या मरेगा यह सोचने की किसे फुर्सत है ? बस वह तो कूद पडा है धडाम ।

पर चूक गया बेचारा ! पाँव निशाने पर नहीं पडे ! खंदक दो कदम दूर रह गई है। वह घबराया नहीं। उल्टे प्रचंड हो उठा है। घावों और रक्त की पिचकारियों से उसका रूप भयंकर बन गया है- साक्षात् यम का रूप । उसके आक्रमण को शत्रु संभाल नहीं पा रहा। मोर्चा टूट चुका है। कबाइली भाग खडे हुए हैं। पीरूसिंह भागतों के पीछे भाग रहा है। उसके घावों से लहू की धारा और भी तेज हो गई है, साथ ही उसकी फुर्ती भी अब तीव्रतम हो गई है। अब दूसरे ठिकाने से भी शत्रु भाग रहा है, तीसरे ठिकाने से भी ।

भारतीय सेना के जवान अंतिम विजय के लिए आ रहे हैं, पर मेजर पीरूसिंह अपनी अंतिम यात्रा पर जा रहा है।

"जाओ वीर, जाओ ! टीटवाल की पहाडी के उस उभरे शिखर से स्वर्ग की सीढ़ियाँ तुम्हारे निकट हैं, बिल्कुल निकट । जाओ, दिव्य आत्माएँ तुम्हारे स्वागत में पलकें बिछाये खडी हैं।"

धरती पर मिट्टी का वह गजभर स्थान धन्य हो गया, जहाँ मेजर पीसिंह ने अपने आखरी साँस तक लडते-लडते प्राण निछावर कर दिये। वह राष्ट्र धन्य हो गया, जिसकी गोदी में ऐसे वीर पुत्र ने जन्म लिया और उसी की गोदी में सो गया ।

राष्ट्रपति ने मेजर पीरूसिंह को मरणोपरान्त वीरता का सर्वोच्च पदक 'परमवीर चक्र' प्रदान किया और श्रद्धांजली अर्पित करते हुए घोषणा की- "उसने वीरता के असाधारण कृत्य के लिए अपने प्राण अर्पण कर दिये । अपने अडिग साहस और पराक्रम से उस अकेले व्यक्ति ने वीरता का जो आदर्श उपस्थित किया है, वह उसके देश-भाइयों को सदैव अनुप्राणित करता रहेगा।"

जीत की हार

गर्मियों का मौसम था। रात बहुत नहीं गई थी। परन्तु दूर तक फैला हुआ तरावङी का सुनसान मैदान बङा भयानक हो उठा था। चारों ओर सन्नाटा था। केवल कगार के उस पार छावनी में तम्बुओं के बाहर बैठे दो आदमी धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। वे बातें करते, सिर हिलाते, कभी जोर- ज़ोर से अट्टहास करते, कभी एक-दूसरे के कान में फुसफुसाते और फिर मैदान के उस पार हाथों से कुछ गुमसुम संकेत करते।

शहाबुद्दीन गौरी ने सिपहसालार के कानों में ओंठ डाल दिये "कहो, तैयार हो ?"

सिपहसालार-बिल्कुल, आज ही, बल्कि सुबह होने से पहले ही पृथ्वीराज पर हमला कर दें, जहाँपनाह ! हुक्म हो तो आज ही राजपूतों की ताकत को मसल डालें और दिल्ली की ईंट से ईंट बजा दें।

शहाबुद्दीन - (ठठाकर हँसते हुए) तो काफिरों को जहन्नुम रसीद कर दो। उनके कत्ल से बहिश्त नसीब होता है।

सिपहसालार-लेकिन इस वक्त होश्यारी से काम लेने की जरूरत है। युद्ध का नियम है कि दुश्मन को कभी छोटा न जानें। फिर वे तो राजपूत हैं। उनका लोहा दुनिया मानती है। उनकी तलवार का चमत्कार हम अपनी आँखों से सोलह बार देख चुके हैं। ऐसा न हो कि इस बार भी.....

शहाबुद्दीन- (जोर का ठहाका लगा कर) हः हः हः हः ! तुम डरते हो कि कहीं इस बार भी तुम्हारा गौरी हार न जाये। तुम्हारा डर दुरुस्त है दोस्त, पर इस बार किस्मत हमारे साथ है। हो सकता है हमें हथियार तक

उठाने की जरूरत न पडे और स्वयं विजयश्री हमारे चरण चूमती दिखाई दे।

सिपहसालार चौंका जैसे किसी ने पाताल की गहराई से उठाकर सहसा उसे आकाश की ऊँचाई तक उछाल दिया हो- विजय ! दिल्ली के चौहानों पर हमारी विजय !

कैसा सुहावना स्वप्न है जहाँपनाह !

शहाबुद्दीन- सुहावना सत्य कहो, सिपहसालार ! लगता है बार-बार की पराजय से तुम्हारा दिल इतना बुझ चुका है कि आज तुम विजय की कल्पना भी नहीं कर सकते। पर इस बार पृथ्वीराज पर हमारी विजय निश्चित है, रात के बाद सुनहरे प्रभात की तरह। यदि अब भी विश्वास न हो तो, लो ये पंक्तियाँ स्वयं पढ़ कर देख लो।

एक पत्र निकाल कर उसकी ओर बढ़ाता है। सिपहसालार ने बत्ती के धुंधले प्रकाश में उस पत्र को पढ़ा, उसकी आँखें चमकने लगीं।

शहाबुद्दीन ने गर्व से चुटकी ली क्यों ? इसका क्या मतलब समझते हो ? जीत या हार ? मेरी बात पर यकीन आया ? शायद नहीं ! तुम्हें तब यकीन आयेगा, जब खुद राजपूत, राजपूत के गले पर छुरी चलायेगा, जब भाई-भाई के लहू का प्यासा होकर युद्ध-क्षेत्र में घूमेगा। जब पृथ्वीराज मेरा बन्दी बन कर मेरे सामने खडा होगा और जब तुम्हारा गौरी अपने हाथों से अपने लाखों देशवासियों की हत्या का बदला चुकायेगा, उस चौहान से। तब तो तुम विश्वास करोगे न मेरी बात का ? खैर, अब वह समय भी दूर नहीं। जरा मेरे और पास आ जाओ, पास, बिल्कुल पास।

फिर दोनों में कुछ गहरी बातें हुई- आँखों ही आखों में, कानों ही कानों में।

अगले ही क्षण छावनी के सामने अलाव जला दिया गया। चिंगारी दिखाते ही घास ने आग लपक ली। तम्बुओं से ऊँची लपटें निकलने लगीं। उनके तेज प्रकाश में छावनी का अग्र भाग दिन की तरह जगमगा उठा और एक-एक तम्बू, एक-एक पलंग, उन पर बाहें पसार कर सोया एक-एक सिपाही, टँगी वदियाँ, खुले बूट, लटकी तलवारें- दूर, बहुत दूर तक सब स्पष्ट दिखाई देने लगा। गौरी ने यह देखा और अपनी मूंछों पर एक और ताव दे दिया। उसने अलाव की आग को और तेज कर दिया। वह स्वयं आँखें फाड-फाड कर देखने लगा अंधकार के पास, मैदान के उस दूसरे छोर पर, क्या ?

बरे, वहीं तो है दुश्मन का डेरा। उसी ओर पृथ्वीराज की सेना छावनी डाले पडी है। इधर अलाव जलते देखकर उधर भी कुछ हिल-डुल होने लगी। राजपूतों ने इधर देखा, नंगी आँखों से देखा, दूरबीनें लगाकर देखा कि दुश्मन क्या कर रहा है ? हमले की तैयारी तो नहीं ? पर नहीं। शत्रु की छावनी में कहीं भी तो ऐसी कोई गतिविधि दिखाई नहीं देती। सारी सेना चैन से पडी सो रही है। उनके तम्बू भी जैसे गहरी नींद में खो गये हैं।

'मस्ती का जाम पिये जा पागल !'

गायिका का मादक स्वर अफगान छावनी में सहसा गूंज उठा। सहसा पायल की रुनझुन, मंजीरे पर मधुर गम्भीर छाप, तबले की ताल, आरोह-अवरोह की उठती-गिरती स्वर लहरियाँ और नर्तकी के थिरकते कदम, इनसे रात्रि का शांत वातावरण एकदम सजीला हो उठा । संगीत का जादू महफिल में उपस्थित रसिकों पर डोरे डाल रहा था, मदिरा के दौर ने उन्हें मस्ती के आलम में पहुंचा दिया ।

राजपूतों ने देखा, सोचा और समझा- युद्ध के लिए उद्यत सेना सुरा के उन्माद में झूमा तो नहीं करती। आक्रमण के इरादे से सिपाही लोग नर्तकियों के लास-विलास की दाद तो दिया नहीं करते। फिर इन नृत्य- समारोहों का क्या मतलब ? हो न हो यवन सेना अभी आक्रमण करने के विचार में नहीं है-कम-से-कम आज तो बिल्कुल ही नहीं ।

अब तक चौहान चौकस था, चौमुखी चौकियों पर पहर-पहर बाद पहरा बदलता था। राजपूत रात-रात भर आँखें फाडे, कान खडे किये अन्धकार को चीर-चीर कर चारों ओर की गतिविधियाँ देखते । पत्ता भी खडकता तो पहरेदार चौंक उठते, सेनापति सतर्क हो जाते। पर अब शत्रु को शिथिल पडे देखकर चौहान भी शिथिल पड गया। उसकी उनींदी पलकों में भी नींद की मादकता न जाने कब दुलक आई और वह बाहों का तकिया बनाकर नंगे पलंग पर ही सो गया। सिपाहियों ने भी कमरबंद खोले, तलवारें खूंटी पर लटकाई और लेट गये बिल्कुल बेफिकर, लंबी तान कर, बहादुर सो गये और बहादुरी अचेत सपनों में खो गई।

शहाबुद्दीन ने अपनी मूंछों पर एक और ताव दिया। छावनी के मुख्य भाग में अलाव की अग्नि और तेज जला दी गई और तम्बुओं के पिछवाडे अन्धकार के पर्दे के पीछे एकदम सैनिकों की सरगर्मियाँ तेज हो गई। गौरी ने सिपाहियों को बुलाकर हुक्म दिया - "बहादुर सिपाहियो !

हमारा दुश्मन बेखटके मीठी नींद में सोया है अभी, इसी क्षण हमला करना होगा उसके ठिकानों पर ! सिपहसालार, तुम अपनी टुकडी लेकर दाईं ओर से आक्रमण करो, मैं शेष सेना लेकर पीछे से शत्रु पर टूट पडता हूँ। बाँईं ओर नदी का किनारा है, उधर की हमें चिन्ता नहीं। मेरी ओर से सिपाहियों को हुक्म दे दो, जो आज के युद्ध में बहादुरी से लडेगा, उसे धन-दौलत से मालामाल कर दूंगा और वापिस ग़ोर पहुंचकर इतनी जमीन-जायदाद इनाम में बख्श दूंगा कि वह जीते जी बहिश्त पायेगा। साथ ही उन्हें ताकीद कर दो कि अगर आज जंग में पीठ दिखाई तो एक- एक को जहन्नुम पहुंचा कर रहूँगा।"

सामने अलाव जलती रही, नृत्य होता रहा और पिछवाडी एक लाख बीस हजार सिपाही शस्त्र बाँधकर तैयार हो गये। उन्हें कूच का आदेश दे दिया गया। बिल्ली की चाल से, दबे पाँव अफगान सेना अन्धकार की आड में मैदान के उस पार बढ़ने लगी।

अभी दो पहर रात बाकी थी, और आकाश मेंता रों के सिवाय सारा संसार सुख-स्वप्नों में खोया-सोया पडा था कि चौहानों की छावनी सहसा 'अल्लाहो अकबर' के नारों से थर्रा उठी। घोडों की टपटप, बूटों की ठपठप, तलवारों को खनखन सुनकर राजपूतों की नींद टूटी तो क्या देखते हैं कि शत्रु उनके सिर पर खडा है।

सोचने का समय नहीं था, जो जहाँ था वह वहीं खडा हो गया। वहीं उसका मोर्चा बन गया, जो हाथ लगा वही उसका शस्त्र बन गया। राजपूत भी अड गये। दोनों लश्कर एक दूसरे से गुत्थमगुत्था हो गये। देखते ही देखते रात्रि का वातावरण शांत से अशांत और अशांत से भयंकर हो उठा। 'मारो-मारो' की पुकारों से चारों दिशाएँ कराह उठीं। शस्त्रों की कड- कडाहट से शांत पहाडियाँ चीत्कार से भर गईं। जंगल के शेर, हाथी और अनन्त जीव-जन्तु भय से जहाँ-तहाँ भागते दिखाई देने लगे।

क्षण-क्षण युद्ध की भीषणता बढ़ती जाती थी। तलवार-तलवार से, भाला-भाले से, नेजा नेजे से टकराने लगा। रुण्ड कंट-कटकर ओलों की तरह भूमि पर गिरने लगे और घड मछलियों की तरह तडप-तडप कर प्राण देने लगे। मौत का बाजार गर्म हो उठा। लहू की नदियाँ बह निकलीं और लाशों के ढेर पर ढेर लग गये। तराई का मैदान मरघट में बदल गया। यह संग्राम बडा विकट था। अफ़गानों की संख्या राजपूतों से दुगुनी-

चौगुनी थी। जिधर देखो अफगान ही अफगान नजर आते थे । एक-एक राजपूत को तीन-तीन, चार-चार अफगान चिपटे हुए थे। सवा लाख और आधे लाख का भला क्या जोङ ! किन्तु पृथ्वीराज की प्रतिभा ऐसी विकट परिस्थितियों में खूब निखरती थी। उसने राजपूत वीरों के ठीक बीच खङे होकर म्यान से तलवार निकाल ली और सिंह-गर्जन के गम्भीर स्वर में उसने पुकारा-

"भारत के वीर सिपाहियो ! तुम्हें इस तलवार की कसम ! अपनी मातृभूमि की कसम ! जवानी की कसम और अपनी आन की कसम ! आज तुम्हें अपने देश की रक्षा करनी होगी। प्रण करो कि प्राण रहते हम अपनी प्यारी मातृभूमि को विदेशियों के कदमों से कभी अपमानित न होने देंगे ।"

राजपतों का खून खौल उठा और उन्होंने तलवारों की धार चूम-चूम कर चौहान क प्रण को दोहराया ।

पृथ्वीराज ने पावों तले धरती की ओर संकेत करके ललकारा- "यह देश हमारा है, आकाश हमारा है, भूमि हमारी है, नदियाँ हमारी है, यहाँ का कण-कण हमारा है। यह भूमि हमारी माँ है और हम इसके पुत्र हैं। बोलो सुपूतो ! क्या तुम पसन्द करोगे कि हमारे देखते-देखते विदेशी हमलावर हमारी मातृभूमि का हरण करके ले जाएँ ?"

सहस्रों स्वर एक साथ गूंज उठे- "कभी नही, कभी नहीं । प्राण रहते हम कभी मातृ-भूमि का अपमान न होने देंगे।"

चौहान ने शत्रु-सेना की ओर संकेत करके आदेश दिया- "तो भारत के सुपूतो ! टूट पङो इन कायरों पर, मार डालो इन भगोङों को । एक-एक को सुला दो आज मैदान में। देखना एक भी दुश्मन आज हमारे हाथों से जीता बचकर न जा सके। बहादुरो ! यह वही गौरी है जिसे आपने और हमने एक नहीं, दो नहीं, बल्कि पूरी सोलह बार इसी भूमि पर परास्त किया है। हमी लोगों ने इसे सोलह बार बन्दी बनाया और सोलह बार क्षमा करके उसे छोङ दिया है। पर वह निर्लज्ज है, ढीठ है। आज फिर वह हमारी वीरता की परीक्षा लेने आ पहुंचा है। बहादुरो ! अब उसे क्षमा मत करो और टूट पङो उस पर ।"

पृथ्वीराज सबसे आगे बढ़ा, सबसे आगे लङा। अपने सम्राट् का जौहर देखकर सैनिकों का उत्साह भी रस्से तोङने लगा। वे शत्रु-सेना पर बाज की तरह टूट पङे। गौरी डाल-डाल लङा तो पृथ्वीराज पात-पात ।

अफगान सिपाही अरब के बाँके घोडों पर सवार थे, उनके पास भाले थे, कवच थे, ढालें थीं सब कुछ था पर राजपूती शौर्य कहाँ से लाते ? वे भी लडे। वे भी मरे ये भी मरे। वे भी गिरे ये भी गिरे। पर राजपूतों की आन को अफगान न पहुंच पाये। पृथ्वीराज जिधर निकल जाता उधर ही प्रलय मच जाती, लाशों के ढेर लग जाते और शत्रु के सिपाही दुम दबाकर भागते दिखाई देते ।

पृथ्वीराज ने सिपाहियों की पीठ थपथपाई - "बहादुरो ! हाथी निकल चुका है, केवल दुम बाकी रह गई है। थोडा ज़ोर और लगाओ तो निश्चय ही शत्रु के पाँव उखड जायेंगे ।"

हुआ भी यही । थोडी ही देर बाद सारी अफगान सेना पीछे को भागती नजर आई। गौरी ने लाख यत्न किया उन्हें रोकने का, कसमें खिलाई, लालच दिये, डर दिखाये, पर राजपूत से चोट खाए हुए एक भो सिपाही ने एक बार भी पीछे घूम कर न देखा। वह ऐसा भागा कि बस अपनी छावनी में जाकर ही दम लिया ।

X X X

सप्तर्षि छिप गये थे और आकाश में भोर का तारा झाँकने लगा था । सिपहसालार ने अर्थभरी दृष्टि से आकाश की ओर देखा और निराश स्वर में शहाबुद्दीन को बोला-वह देखिये भोर का तारा भी निकल आया, वह अब भी नहीं आया ।

शहाबुद्दीन-वह आयेगा, अवश्य आयेगा। इन काफिरों में यही तो दो खूबियाँ हैं-एक तो वे अपना वचन नहीं झुठलाते, दूसरे, युद्ध में पीठ नहीं दिखाते। बस, आता ही होगा। यहीं, इसी समय उसने मुझे मिलने को कहा था।

सिपहसालार- कहीं हम भटक तो नहीं गये ?

शहाबुद्दीन ने जेब से पत्र निकाला और उसकी पंक्तियों को पीते-से हुए बडबडाया - यही मैदान है, यही पेडों का झुरमुट, यही भोर का समय- देखो साफ लिखा है " आप वहाँ मेरी प्रतीक्षा करें।"

शहाबुद्दीन ने झुंझलाहट से पत्र को मरोड डाला और एक ही झटके से उसे जेब में सरका कर बोला- पर अब एक-एक क्षण भारी हुआ जा रहा है। कुछ भी हो मुझे विश्वास है वह आ रहा होगा ।

X X X

प्रभात का दूधिया प्रकाश दिशाओं में खिल चुका था। सुबह के इस पहले उजाले में पृथ्वीराज ने क्या देखा कि अफगानों की भागती सेना, सहसा लौट पडी है। वह फिर बढ़ी आ रही है। फिर चढ़ी आ रही है दुगुने वेग से, तिगुने उत्साह से। रहस्य उसकी समझ में न आया। वह देखता का देखता रह गया। शत्रु सेना पास पहुंच गई।

पर यह क्या, ये तो अफगान नहीं, राजपूत दिखाई देते हैं ये। वही चाल, वही ढाल, वही वेश, वही फुर्ती। निश्चय ही राजपूत हैं ये। पर कौन हैं ये ? क्यों, कैसे, किस मतलब से आए हैं ? पृथ्वीराज अबूझ दृष्टि से देखता रहा। सेना अब बिल्कुल उसके निकट आ चुकी थी।

पृथ्वीराज पर सौ बिजलियाँ एक साथ गिर पडतीं तब भी उसे इतना कष्ट न होता जितना यह देखकर हुआ कि उस सेना का नायक और कोई नहीं स्वयं जयचन्द है। उसके मुख से अवश्य निकल गया- जयचन्द ! तुम ! और यहाँ ?

जयचन्द- हाँ, मैं हूँ जयचन्द ! तुम्हारा भाई जयचन्द ! न पहचाना हो तो अच्छी तरह पहचान लो। जिसका तुमने भरी सभा में अपमान किया था, जिसकी अबोध कन्या को तुम ले उडे थे। जिसके राज्य को तुमने षड्यन्त्रों से हडप लिया था, वही जयचन्द हूँ मैं।

पृथ्वीराज - तो तुम पुराने बैर का बदला चुकाने आये हो आज। पर यह तुम्हें शोभा नहीं देता जयचन्द, कि एक विदेशी हमलावर का साथ देकर तुम अपने ही भाइयों पर तलवार उठाओ।

जयचन्द चिढ़कर बोला- यह धर्मोपदेश किसी और को सुनाना बाबाजी ! जब तुमने मेरे राजसूय यज्ञ में विघ्न डाला, मेरी किशोरी कन्या को बलपूर्वक उडाकर ले गये और मेरे निर्दोष अनगिनत सिपाहियों को तुमने तलवार के घाट उतार दिया तब कहाँ था तुम्हारा धर्म ? क्या वह सब तुम्हें शोभा देता था ?

पृथ्वी० - वह हमारा तुम्हारा आपस का झगडा था जयचन्द ! तुम एक तरफ थे, हम एक तरफ। तुम भी लडे, हम भी लडे। पर अब हमारा सामना विदेशी हमलावर से है, जो हमारा तुम्हारा साँझा शत्रु है। आओ, एक और एक मिलकर हम ग्यारह हो जाएँ और शहाबुद्दीन को देश की सीमाओं से बाहृ खदेड दें। आपस के झगडे हम फिर निपटा लेंगे।

जयचन्द - खूब ! बहुत खूब ! मुट्ठी में आये शत्रु को मैं छोड दूं तो

मुझे सयाना कौन कहेगा ?

पृथ्वी०-अपने क्षणिक स्वार्थ के लिए समूचे देश की स्वतन्त्रता को खतरे में डालकर तुम्हें सयाना कौन कहेगा ? देशद्रोही, गद्दार कहीं का ! दोनों ओर से तलवारें खिंच गईं। पृथ्वीराज लङा पर अघबुझे दिल से। उसकी मुठ्ठी भर थकी-माँदी सेना चन्द्रकला की तरह क्रमशः क्षीण होने लगी। जयचन्द की ताजा-दम सेना के सम्मुख बुझते-बुझते पृथ्वीराज की सभी सेना शीतल-शान्त हो गई।

(२)

दृश्य बदला। कल का दिल्लीपति आज गौरी का बन्दी था। ऐसे शानदार कैदी को लूट के अतोल-अमोल धन के साथ ऊँटों पर लादकर शहाबुद्दीन बङी शान से अपने देश, ग़ोर में पहुंचा। उसके स्वागत में तोरण बनाये गये, गलियाँ, बाजार सजाए गये। विजय के उपलक्ष्य में राजधानी में कई दिनों तक उत्सव मनाने की घोषणा कर दी गई। उधर लोग उत्सव मना रहे थे, इधर गर्म सलाखें चुभोकर पृथ्वीराज की आँखें निकाली जा रही थीं। बेचारा अन्धा हो गया।

एक दिन पृथ्वीराज के कवि चन्द ने दरबार में उपस्थित होकर निवेदन किया - जहाँपनाह ! विजयोत्सव के इस उत्सव पर पृथ्वीराज चौहान आपको बधाई देते हैं और चाहते हैं कि शब्दबेधी बाण का तमाशा दिखाकर आपका मनोरंजन करें।

गौरी ने तिरस्कार-भरे स्वर में कहा- अन्धा चौहान क्या तमाशा खाएगा ?

चन्द-शब्दवेधी बाण के लिए आखों की आवश्यकता नहीं होती शाहंशाह !

गौरी-क्या मतलब ?

चन्द-केवल शब्द को कानों से सुनकर उस पर निशाना लगाया जाता है। इस काम में बङे कुशल हैं, हमारे चौहान ! यदि आज्ञा हो तो उपस्थित करूँ।

गौरी-अवश्य, अवश्य। साथ ही नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया जाए कि शाही कैदी का तमाशा देखने के लिए जनता निमंत्रित है।

अखाङा तैयार था। चारों दिशाएँ तमाशबीनों से खचाखच भरी थीं।

एक ओर लोहे के सात तवे टँगे थे और उनके पीछे ऊँचे सिंहासन पर विराज- मान था स्वयं शहाबुद्दीन गौरी। पृथ्वीराज के हाथों में धनुष-बाण दे दिया गया और अगले ही क्षण तवे पर पहली चोट पडी - टन। दूसरी चोट के शब्द पर बाण चलाना था। सुलतान के आदेश की प्रतीक्षा थी। आखिर शहाबुद्दीन ने ऊँचे स्वर से पुकारा एक ! दो !! तीन ! ! ! इधर सुलतान के मुँह से तीन निकला और उधर तवे पर दूसरी चोट पडी-टन ! दोनों एक साथ। पृथ्वीराज ने 'टन' के बजाय 'तीन' शब्द को लक्ष्य करके इस जोर से बाण चलाया कि वह शहाबुद्दीन प्राण लेकर उसके गले से पार निकल गया।

अगले ही क्षण चन्द की कटार नागिन-सी लपकी। पहले वार में पृथ्वीराज को और दूसरे वार में स्वयं को उसने वीर-लोक में पहुंचा दिया।

म्यान से बाहर

स्टेशन छोटा था और रात का समय। खोंचेवालों की चहल-पहल ठंडी पड चुकी थी और बैंचों पर बैठे हुए हवाखोर भी उठ-उठकर अपने घरों को जा चुके थे। जब स्टेशन बिल्कुल सूना हो गया और कलकत्ता से गाडी आने में केवल एक मिनट शेष रह गया तो एक काले रंग की मोटर स्टेशन के फाटक पर आकर रुकी। उसमें से जो व्यक्ति निकले वे एक मौलवी साहब थे। दाढ़ी लम्बी पर मूंछ नदारद। सिर पर तुर्की टोपी, कंधों पर तहदार अचकन और नीचे तंग चूडीदार पायजामा। मोटर में सिवाय ड्राइवरों के कोई दूसरा आदमी नहीं था। इधर मौलवी साहब कदम बढ़ाते हुए प्लेटफार्म तक आ पहुंचे, उधर रेलगाडी ठीक उसी सैकिंड आई, रुकी और चल दी। स्टेशन के किसी अधिकारी की नज़र मौलवी साहब पर न पडी। वे लपककर दूसरे दरजे में चढ़ गये। ड्राइवर उन्हें विदा करने आया था, पर मुँह से बोलकर किसी ने कुछ न कहा। बस आँखों ही आँखों में विदाई हो गई। गाडी चल पडी।

उसी डिब्बे में एक सरदार जी भी थे। मौलवी साहब को वे देर तक देखते रहे-घूरते रहे कहें, तो झूठ न होगा। मौलवी साहब ने उनकी ओर कोई ध्यान न दिया। वे उसी तरह भाव-मग्न बैठे रहे और खिडकी से बाहिर काले अँधियारे में जैसे उनकी आँखें कुछ खोज रही थीं। उनकी वह चुप्पी सरदार जी को अखरने लगी। जब उनसे न रहा गया तो वे उठकर मौलवी साहब के पास आकर बैठ गये और बहुत धीमे स्वर में उन्होंने पूछा- "जैसे कहीं देखा है मैंने आपको ?"

"होगा।" मौलवी साहब के होंठ एक बार हिले और घुट गये। "आपका शुभ नाम ?" सरदार जी एक कदम और आगे बढ़े। "जियाऊद्दीन।" मौलवी साहब का उत्तर था।

"काम क्या करते हैं ?" सरदार जी ने दबी जबान से पूछा। "बीमा कम्पनी का संचालक हूँ।" मौलवी साहब ने वही नपा-तुला जवाब दिया।

बातें खत्म हो गई पर गाडी चलती रही। सुबह जब गाडी पेशावर पहुँची तो एक पठान युवक स्टेशन पर पहले से मौजूद था। फाटक पर पहले से एक मोटर खडी थी-काली मोटर। मौलवी साहब को वह ले उडी और जिस घर के सामने जाकर खडी हुई वह मनुष्य के मन के समान रहस्यमय

था। ऊपर से सीधा और सरल मकान, पर अन्दर से एक छोटा-मोटा किला। नीचे एक तहखाना भी था। मौलवी साहब ने उसी के एक रहस्यमय कमरे में प्रवेश किया। दरवाजा बन्द हो गया।

तीसरे दिन जब दरवाजा खुला तो मौलवी के बदले एक कबाइली पठान निकला, टाँगों में सलवार, गले में लम्बा घुटनों तक झूलता हुआ कुर्ता और उस पर रेशमी वास्कट, सिर पर पठानों जैसा कुल्ला और ऊपर लुंगी। घर के किसी आदमी को न उसके आने का पता चला था और न

अब जाने का। केवल घर के मालिक को खबर थी और कार के ड्राइवर को। उसी दिन रहस्यमय ढंग से वह कार भी गायब हो गई। पता नहीं कहाँ ? अब जब वह लौटी तो कार खाली थी। खान उसमें न था।

बात यह थी कि उसे काबुल जाना था और सीमा पार करने की इजाजत उसके पास न थी। आगे रास्ता भी पैदल और उजाङ था, डाकू कभी भी गोली मार सकते थे। लोहा लोहे को काटता है-खान ने उसी इलाके के एक रहमत खाँ से गाँठ-साँठ की। "मैं सब निबट लूंगा"-रहमतखाँ ने आश्वासन दिया।

खान और रहमतखाँ दिन-भर चलते रहे। थककर चूर हो गये, पर चलते रहे वे तब तक जब तक अद्दाशरीफ़ न पहुँच गये। एक मुसाफिर ने 'अस्सलामालेकुम' बुलाई। खान ने माथे को हाथ से छूकर सलाम स्वीकार किया। "कहाँ जायेंगे आप ?" उसने पश्तो में पूछा। खान चुप रहा। रहमतखाँ ने पश्तो में उत्तर दिया- "मेरा भाई है यह, गूंगा है बेचारा, बोल नहीं सकता।"

"खुदा हाफ़िज।" कहकर मुसाफिर ने रुखसत ली।

खान मुस्करा दिया।

रहमतखाँ कुछ देर के लिए गायब हो गया। जब वह लौटा तो उसके साथ तीन पठान थे-बन्दूकों कारतूसों से लैस। रहमत लौट गया और वे तीनों पठान खान साहब को साथ लेकर बीहड़ जंगल में घुस पड़े। यहाँ से लालपुरा तक पूरे एक दिन का पैदल रास्ता है। जंगल भयानक था पर रास्ते में कोई खास घटना नहीं घटी। लालपुरा के खान को वैसे इनके पहुँचने की पहले ही खबर थी, क्योंकि इनके पहुँचने पर लालपुरा में उन्हें एकदम किसी गुप्त स्थान में छिपा दिया गया और जब अगले दिन ये चलने लगे तो लालपुरा के खान ने सिफारिश का एक पत्र भी लिख कर उन्हें दिया-

"मैं प्रमाणित करता हूँ कि पत्रवाहक साहब जियाउद्दीनखाँ कबाइली इलाके के रहने वाले हैं और मेरे परम मित्र हैं। वे सखी साहब की यात्रा पर जा रहे हैं। अफगान सरकार से मेरा अनुरोध है कि मार्ग में इन्हें किसी प्रकार का कष्ट न अनुभव होने देवें। मैं अनुगृहीत हूँ।

हस्ताक्षर

खान लालपुरा

कबाइली इलाका पार करने में इस पत्र ने बडी मदद दी पर काबुल नदी मार्ग में पडती थी। उसके किनारे-किनारे तैनात कर्मचारियों ने पार उतरने की आज्ञा देने से साफ इन्कार कर दिया। तीनों पठानों ने आपस में कुछ काना-फूसी की और न जाने कहाँ से तीन मशकें भी पहुँच गई। कडाके की सर्दी पड रही थी और तीर-सी हवा अंग-अंग के आरपार निकलती-सी सरसरा रही थी। फिर भी चारों ने मशकों पर लेटकर नदी पार की। संयोगवश नदी पार काबुल जाने वाले कुछ ट्रक खडे हुए थे। पठानों ने बातों ही बातों में ट्रक ड्राइवर से सौदा पटा लिया। चारों जने पीपे-बोरियों के नीचे छिपकर काबुल पहुँच गये।

अब क्या करें ? कहाँ, किसके घर ठहरा जाए ? बहुत ढूंढने पर एक सराय का पता चला। रहने को जगह भा मिल गई और खाने को मक्का की रोटी थी। खान और पठानों ने छककर खाया और लम्बी तानकर सो गये। सुबह उठे तो सामने पुलिस का सिपाही खडा था। उसने प्रश्नों की झडी लगा दी -

"कौन हो तुम ? कहाँ से आये हो ? कहाँ जाओगे ? कब से यहाँ ठहरे हो, कब जाओगे ?"

एक पठान ने धीरज से कहा- "भाई ! यह मेरा गूंगा-बहरा भाई है। मैं इसे सखी साहब ले जा रहा हूं। आजकल बहुत बर्फ पड गई है और रास्ते बन्द हैं, इसलिए रुक गये हैं। बस रास्ता खुलते ही चल देंगे।"

सिपाही को सन्देह हुआ, बोला- "तुम सब कोतवाली चलो।"

पठान ने दो रुपये निकाल कर चुपके से उसकी मुट्ठी में थमा दिये। वह चुपचाप चला गया। तीन दिन बाद वह फिर आया। अबकी बार १७ रुपये पर सौदा ठहरा। अगले दिन वह फिर आ धमका और लगा अंटसंट बकने। खान ने अपनी घडी उतार कर दे दी और पीछा छुडाया।

उसी समय खान का एक सशस्त्र पठान दौडा हुआ आया और हाँफते-हाँफते बोला-"गजब हो गया। पुलिस को आप पर खुफिया जासूस होने का शक हो गया है। यहाँ रहे तो मुसीबत रहेगी। अब निकल चलना ही ठीक होगा। अभी, इसी समय।"

वे निकले। रास्ते में जीवनलाल का मकान पडता था। इटली के राजदूत का वहाँ आना-जाना था। जब राजदूत की मोटर निकली तो एक पठान ने उन्हें रुकने का इशारा किया। मोटर रुक गई।

राजदूत ने पूछा- "क्या बात है ?"

पठान ने कान में कहा- "भारत के एक महान क्रान्तिकारी नेता यहाँ आये हुये हैं।"

राजदूत चौंका-"कौन ?"

पठान - "सुभाष बाबू ! "

राजदूत ने पूछा- "कहाँ हैं वे ?"

पठान ने खान की ओर संकेत कर दिया। राजदूत ने खान की ओर विस्मय से देखा और नम्रता से हाथ जोङ दिये । राजदूत की पत्नी भी साथ। थी। उसने पूछा- "हॉव कैन वी हैल्प यू सुभाष बाबू ?"

खान ने संक्षेप में बताया कि उन्हें पासपोर्ट की आवश्यकता है, ताकि वे मास्को पहुँच सकें।

पासपोर्ट बन गया और सुभाषबाबू उर्फ खान की विदाई का क्षण समीप आ पहुंचा । नहीं-नहीं। अब उनका नाम 'मिस्टर कैटेराइन' था, यही नाम पासपोर्ट पर लिखा था। खैर, परसों के सुभाष, कल के गूंगे खान और आज के मिस्टर कैटेराइन मोटर द्वारा काबुल से रूस की सीमा में पहुँचे और वहाँ से सीधे बलिन - जर्मनी की राजधानी में।

एक दिन सहसा बलिन रेडियो से सुभाषबाबू की आवाज सुनकर अंग्रेज सरकार दंग रह गई। पर अंग्रेज़ बेबस थे। तलवार म्यान से बाहर निकल चुकी थी।

राजा के प्राण अभी गले में ही अटके थे कि बाहर 'गद्दी' के लिए छीना-झपटी आरम्भ हो गई। सदाशिव आजतक सूबेदार साहब का कुछ न लगता था। उसने न जाने कौन-सा गङा रिश्ता खोद निकाला कि, बक़ौल उसी के, राव गंगाधर के बाद झाँसी का एकमात्र उत्तराधिकारी यदि कोई था तो सदाशिव ही।

"हुं !" ओरछे के दीवान ने जवाँमर्दी दिखाई "औरत को अकेली देखकर रियासत को हङपना चाहता है। ओरछा जैसे उजङ गया हो। दीवान जैसे पङोस के कोई होते ही न हों। कह दो उससे कि शिवजी भभूत रमाकर कैलाश पर रमते ही शोभा पाते हैं, गद्दी पर बैठते नहीं। देखता हूँ ओरछा के दीवान के रहते झाँसी की ओर कौन आँख उठाकर देखता है। झाँसी रहेगी तो ओरछा का अंग बनकर ही।"

कम्पनी के अहलकार अलग ही खिचङी पका रहे थे।

माटिन-मरता मरता भी दस-बीस दिन तो काट ही जाएगा। नवाब है न ! मुफ्त की बेटा पेंशन उङाता है। न काम न धाम।

एलिस-सब तरफ अन्धेर मचा है रियासत में। मार्टिन - दिन-दहाङे लूट मचती है।

एलिस - घूस चलती है।

माटिन-अभी क्या, छबीली को बनने दो महारानी, फिर देखना यहाँ के रंग।

एलिस-झांसी की एक-एक ईंट न पङोसी उखाङ ले गए तो मेरा नाम एलिस नहीं।

मार्टिन-पर इसका इलाज क्या है ?

एलिस-बस एक ही इलाज है- अंग्रेजी राज्य। माटिन उहाका लगाकर हँसता है-हः ! हः !! हः !!! सच मजा

एलिस- मैं कहता हूं लार्ड डलहौजी बस एक इशारा कर दें, बाकी आजाए। हम सम्भाल लेंगे।

मार्टिन - सुनते हैं सूबेदार के कोई बेटा-बेटी भी नहीं है ?

एलिस-बस फिर तो काम बना-बनाया है। यह हिन्दुस्तान है जिसका कोई गोत्र नहीं उसका कुशल गोत्र। धीरे-धीरे सब मुकुट और ताज हमारे पैरों पर गिरेंगे।

इधर ये बातें उङ रही थीं, उधर ठीक उसी समय गंगाधर राव को पहली हिचकी आई। लक्ष्मीबाई वैद्य जी को बुलाने दौङी। राव ने डूबती हुई आवाज में कहा - "क्या करोगी लक्ष्मी ! अब तो वैद्य का आना व्यर्थ है। हाँ, तुमसे एक काम है. पास आओ... बैठ जाओ।"

गंगाधर राव ने नन्हे बालक आनन्दराव को अपने हाथों उठाकर लक्ष्मीबाई की गोद में सौंप दिया और कहा- "इससे तुम्हारी गोद हरी रहेगी, लक्ष्मी !"

"और झाँसी का सिंहासन भरा रहेगा, महाराज !" लक्ष्मीबाई की आँखों से आँसू छलक आये। गंगाधर के हाथों में शक्ति नहीं थी, फिर भी बुझते प्राणों का सारा बल लगाकर अपनी सदरी में से कागजों का एक पुलिदा निकाल कर लक्ष्मी की ओर बढ़ा दिया- बस यही थी एक रियासत के सूबेदार की अपनी रानी के नाम अन्तिम भेंट। फिर उसकी दोनों आँखें मुद गई।

उसके चार दिन के बाद ही एक ऐसी घटना घट गई जिसने सारा नक्शा ही बदल दिया। रानी के घावों पर नमक छिङकने के लिए लार्ड डलहौजी ने यह आदेश निकाला -

"झाँसी के राजा को बिना कम्पनी सरकार की अनुमति लिए गोद लेने का अधिकार नहीं। रानी योग्य और लोकप्रिय है, परन्तु कम्पनी का शासन जनहित की दृष्टि से ज्यादा अच्छा होगा। ऐसी परिस्थिति में रानी को पाँच हजार रुपये मासिक पेंशन, निजी सम्पत्ति और नगर का महल -दे दिया जाए।"

मार्टिन और एलिस का षड्यंत्र सफल हो गया था। वे प्रसन्न थे। पर झाँसी उदास थी और झाँसी की रानी उग्र। वह कहती थी, "मैं अपनी झाँसी नहीं दूंगी।"

(२)

लाल और मोतियों से जडी रेशमी टोपी, पीला पायजामा, कमर तक फैली कंचुकी, चोली और चादर, गले में हीरों की माला और कमर में दो पिस्तौल - झाँसी की रानी थी वह।

पर अब महारानी से महाराणा बन चुकी थी वह-लाल रंग की पगडी, लाल ही रंग की जैकेट और लाल ही रंग की सलवार, कमर में तलवार, दाँतों में लगाम, घोडे पर सवार या हवा पर सवार, कहाँ चली मर्दानी ? अंग्रेजों से झाँसी को आजाद कराने।

विद्रोही हवालदार गुरबख्श ने उपस्थित होकर निवेदन किया - "महारानी ! आपकी तलवार देखकर तो ईर्ष्या होती है। काश ! हमारे विद्रोही जवानों के पास भी एक-एक तलवार होती।"

रानी ने हीरों की माला दे दी, गहने उतार डाले, आभृषण फेंक दिये, एक लाख में बिके वे। "हवालदार ! अपने जवानों को उनका मुह-माँगा वरदान दो और कहो कि यह तुम्हारी महारानी का उपहार है, देखना इसकी धार को लजाना नहीं। यह जितना रक्त माँगे इसे तृप्त करना।"

हवालदार गुरबख्शसिंह ने नारा बुलन्द किया-खल्क खुदा का - मुल्क बादशाह का.....

विद्रोही जनता - "आलम महारानी लक्ष्मीबाई का।"

५ जून सन् १८५७ को झाँसी में भारतीय सैनिकों ने विद्रोह की चिंगारी प्रज्ज्वलित कर दी, जिसकी पहली आहुति बने झाँसी के गौरांग अंग्रेज। वहाँ के सारे अंग्रेजों का सफाया कर दिया गया। झाँसी के किले पर विद्रोहियों का अधिकार हो गया। अब वह फिर स्वतन्त्र था। सारा किला "महारानी लक्ष्मीबाई की जय" के नारों से गूंज उठा।

"महारानी ! महारानी ! जनरल ह्य रोज एक विशाल सेना लेकर आँसी पर चढ़ आया। बे-अन्त सिपाही और बेशुमार तोपखाना है साथ में" - सिपाहियों ने सूचना दी।

"ईंट का जवाब पत्थर से। तुम भी तोपों का मुँह खोल दो।" महारानी ने आदेश दे दिया। प्रश्न गोला था तो उत्तर भी गोला। मुँह तोड

जवाब मिला अंग्रेजों को। ह्यू रोज को अपने बूते पर बङा घमण्ड था पर उसका एक कदम भी आगे बढ़ना कठिन था- आगे महारानी थी, नहीं- नहीं महाराणा थी, मर्दाना थी वह।

"गौस ! देखते क्या हो ? साँप को मत मारो, साँप की माँ को मारो।" रानी का संकेत गुलाम गौस ने समझ लिया। उसने ऐसा निशाना लगाया कि अंग्रेजी फौज का तोपची ढेर हो गया। "अब बढ़े चलो बहादुरो ! तलवार का करतब दिखाने का यही अवसर है।" महारानी ने स्वयं तलवार चलाकर सेना का नेतृत्व किया। ह्यू रोज के नाकों दम आ गया पर ताकत का नशा था उसे। नई फौज आ गई। नया तोपखाना पहुँच गया।

रानी झाँसी ने ताँत्या टोपे और रावसाहब को याद किया, वे आये पर तोपों का मुकाबला न कर सके। मुँह की खाकर लौट गये। तेरह दिन के घेरे के बाद झाँसी पर अंग्रेज़ों का अधिकार हो गया। हाय !

जब रानी झाँसी अपने दस-बारह सैनिकों को लेकर किले से बाहर निकली तो वह मर्दाना वेष में थी। वह घोङे पर सवार, दाएँ हाथ में तलवार और बायें हाथ में ढाल और पीठ से बँधा था बालक आनन्दराव। घोङे पर उङी जा रही थी वह आँधी की तरह। पागल था लैफ्टिनेंट बोकर, जिसने इस क्षण पीछे से रानी पर आक्रमण किया। 'ले तू भी प्रसाद लेता जा।' रानी की तलवार बिजली की तरह लपकी और बेचारा बोकर कट- छिलकर गिर पङा। वह मरा या जिया, यह देखने की किसे फुर्सत ?

रानी १०३ मील का फ़ासला २४ घण्टों में घोङे की पीठ पर तय करके कालपी पहुंची। वहाँ का दुर्ग क्रांतिकारियों का गढ़ बना। डा रोज ने यहाँ भी आक्रमण कर दिया। उसके पास तोप, बन्दूकें, तीर, तलवार सब कुछ था गोलाबारी के सामने मराठा सिपाही टिक न सके।

"रुको" महरानी ने अपनी उखङती सेना को कहा और अपना घोङा उनके आगे बढ़ा दिया। अढाई सौ सुशिक्षित घुङसवार रानी के संकेत पर बरसते गोलों में भी घुस पङे। भागते फिर लौट आये, उखङते फिर जम गये और दुश्मन का सफ़ाया करने लगे। रानी तलवार की घनी थी। लाखों की भीङ को भी चीर-फाङ डालना उसके बाद कलवार की था। पर तोपखाने का उपाय उसके पास न था। फिर भी वह लाडा, बढ़-बढ़ कर लङी और तब

तक लङी जब तक कि उसका घोङा लहू-लुहान होकर गिर न पङा और सूर्य पश्चिम में अन्त न हो गया।

(३)

ग्वालियर को अंग्रेजों ने चारों ओर से घेर लिया। पूर्वी भाग की रक्षा स्वयं रानी झाँसी कर रही थी। आज वह मर्दाना वेष में थी-पर ३६५ दिन की थकी-माँदी, घायल, निर्बल और निराश। फिर भी आज पहल उसने की। शत्रु पर पहली तोप मराठों ने दागी। धाँय ! युद्ध भभक उठा। दोनों तरफ से गोले गरज उठे। ये भी लङे, वे भी लङे। खूब लङे, पर रानी का तोपखाना उसके साहस का साथ न दे सका। उसके सिपाहियों का साहस उमङकर आकाश को छू गया और गोले-गोलियाँ बुझी राख के ढेर हो गये - शांत-मौन- उनके पास चलाने को अब एक भी गोली नाम को भीन थी।

ह्यू रोज ने यह देखा और अपने व्यूह को जटिल बना दिया। रानी घिरी, सिपाही घिरे, घुङसवार घिरे, सेनापति घिरे - घिरते-घिरते ग्वालियर की सारी सेना अंग्रेजों के सेनापाश में जकङी गई।

रानी तब भी लङी, केवल तलवार से लङी, दुगुने जोश से लङी। तिगुने पराक्रम से चक्रव्यूह में घुसी-पर वह घुसती ही चली गई; निकलने को कोई मार्ग न था। अब रानी की चेतना जागी। बचपन में वह ऐसे कितने ही व्यूह खेल-खेल में तोङ चुकी थी। आज उसकी यह खिलवाङ काम आ गई। वह जिस वेग से व्यूह में घुसी थी उसी वेग से शत्रु-सेना को काटती हुई बाहर निकल आई।

वह भागी, एक अंग्रेज सवार ने रानी की तरफ बन्दूक दाग दी। ठीक पीठ में गङ गई गोली। बीसियों घावों में एक और घाव बढ़ गया-- पर रानी फिर भी आगे बढ़ती चली गई।

कम्बख्त नाले ने भी इसी समय रास्ते में आना था। घोङा घायल था। फाँद न सका। तब तक दुश्मन पहुँच गया। एक अंग्रेज ने तीखी तलवार चला कर रानी का आधा सिर काट डाला। आँखें बाहर निकल आईं। दूसरे सिपाही ने लपक कर रानी की छाती पर संगीन भोंक दी। इससे पहले कि रानी गिरे, वह तङप कर घूमी, जिस अंग्रेज ने उस पर वार किया था उसे मौत के घाट उतारा और घोङे पर तन कर बैठ गई।

कहते हैं रानी की लोथ भी दूर तक घोडे पर सवार चली गई और उसके हाथों में तलवार चलती रही, चलती रही।

रानी की गोद से दो वस्तुएँ प्राप्त हुईं-बालक आनन्दराव का शक और कागजों का एक पुलिंदा।

हाँ तो, उदयपुर से भावनगर जाते हुये अरावली का जो उजाङ पहाङी इलाका पङता है न, हर भील, हर गूजर और हर राहगीर वहाँ के खतरे से परिचित है। भगवान् झूठ न बुलावे, लम्बाई में दस-बारह कोस और चौङाई में चालीस-पचास कोस से कम तो क्या होगा, अधिक भले ही हो। इस बीच का सारा प्रदेश दुर्गम पर्वतों और बीहङ जंगलों से घिरा हुआ है। बीच-बीच में छिपने को अनगिनत गुफायें, लाखों ऊँचे-नीचे खड्ड और करोङों कँटीली झाङियाँ हैं। कितना भयंकर स्थान है यह ! देखते ही यम की याद आती है। दिन-दहाङे कोई किसी को कत्ल भी कर डाले तो कानों-कान खबर तक न हो। किसी ने इसका 'हल्दीघाटी' नाम झूठे थोङे ही रखा है। आज यहाँ बुनस नदी की निर्मल धारा बहती है, तो कल यहाँ रक्त की धारा बहते कितनी देर लगती है।

अभी उस दिन की बात है, किसी ने दिन-दहाङे एक गडरिये का कत्ल कर डाला। अन्तल्ला गाँव का नाम तो सब लोग-लुगाई जानते हैं। आपने भी सुना ही होगा। बस, वहीं का चरवाहा था वह। दिन को भेङ-बकरियाँ चराता और रात को उन्हीं के साथ बाङे में पङ कर सो रहता। न किसी के लेने में, और न किसी के देने में। किसी का क्या बिगाङता था बेचारा। सुबह भेङें चराने जंगल को गया। वहीं किसी ने उसका कत्ल कर डाला। सिर अलग, धङ अलग। पिछले जन्म का वैर निकाला किसी ने। नहीं तो मुर्दे को फाँसी कौन लगाता है। पता नहीं गरीब के प्राण कैसे निकले होंगे ? पर जब लोग-लुगाई पहुँचे तो पेङ की डाल से सिर अलग झूल रहा था और घङ अलग। मुर्दे को फाँसी ? राम राम..

करल के नाम पर हजारों की भीङ जमा हो गई। गाँव का मामला

जो ठहरा, जिसने सुना वहीं भागा चला आया। उड़ते-उड़ते उदयपुर' तक खबर पहुँच गई। खठामोर तक के लोग इस कत्ल को देखने के लिए आये। आखिर कत्ल हुआ क्यों, किसने किया, उसे मिला क्या आदि ?

एक भील - "सुना है लाश के पास से कुछ कागपत्रे भी मिले हैं।" दूसरा भील - "तब तो कुछ सुराग मिल कर ही रहेगा।"

तीसरा भील - "हत्यारे को मौत 1"

चौथे ने तलवार खींच ली- "खबरदार, जो आगे एक शब्द भी मुह से निकाला तो जबान खींच लूंगा !"

बात खत्म हो गई पर बतंगड़ खत्म न हुआ ! भीड़ का रुख इसी ओर को पलट गया। सुनी-सुनाई के कारण जनता इसी ओर उमड़ पड़ी। तभी पीछे से किसी का गम्भीर स्वर सुनाई दिया- "यह हत्या मैंने की है।"

लोगों ने देखा, यह और कोई नहीं, उन्हीं के महाराणा प्रतापसिंह हैं। भीड़ को जैसे काठ मार गया हो। जो जहाँ खड़ा था वह वहीं खड़ा का खड़ा रह गया। आँखें फटी की फटी रह गईं, मुंह खुला का खुला रह गया। लोग महाराणा की ओर एकटक देख रहे थे और महाराणा लोगों की ओर। लोगों की आँखों में गहरी उत्सुकता थी और महाराणा की आँखों में क्रोध की चिंगारियाँ।

प्रताप ने एक उड़ती नज़र जनसमूह की ओर डाली और भरयि हुए कण्ठ से बोले- "मेरे प्यारे साथियो ! जिस चरवाहे की लाश को आप लोग सामने पेड़ पर लटकते देख रहे हैं, उसकी हत्या मैंने की है। हत्यारा में हूँ। दोनों आपके सामने हैं। निर्णय आपके हाथों में है। जिसे चाहें दण्ड दें, जिसे चाहें पुरस्कार दें।"

लोग महाराणा के मुँह की ओर ठगे-से देखते रह गये-मौन, शांत, अडिग, अचल। महाराणा ने मौन भंग किया'- 'मेरे माननीय सरदारो ! आपको यह जान कर दुःख होगा कि यह चरवाहा अबोध चरवाहा न था। संक्षेप में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि वह शत्रु का भेदिया था, अर्थात् गुप्तचर। क्या आप इस बात की कल्पना कर सकते हैं ? क्या आप यह सहन कर सकते हैं कि वह नमक खाये हमारा और हमारे गुप्त रहस्य पहुँचाये शत्रु को ? इसके लिए मेरे पास प्रबल प्रमाण हैं।"

"हम प्रमाण की आवश्यकता नहीं महाराणा!" सहस्रों कंठ एक स्वर से पुकार उठे, हजारों तलवारें म्यान से निकल कर हवा में लहरा उठीं और

लोग यह दहाड़ते हुए लटकती लाश की ओर लपके- "वह देशद्रोही है ! गद्दार है ! नमक हराम है आदि !"

भीड़ क्रोध से पागल हो उठी थी नहीं तो मरे को मारने से क्या मतलब ? पर विश्वासघात के प्रति जनता में भयंकर क्रोध था। वह प्रकट हो कर रहा । लोग भाले और तलवारें तानकर एक अकेली लाश पर टूट पड़े। बोटी-बोटी उसकी काट डाली। लाश के टुकड़े-टुकड़े उन्होंने उड़ा दिये । इस से भी भीड़ का क्रोध शांत न हुआ। लोगों ने माँस के टुकड़ों को भी पावों तले मसल डाला, हड्डियाँ कुत्तों को डाल दीं और आंतों में आग लगा दी।

कड़कती बिजलियाँ, उफनता सागर, जोर की हवा और भीड़ का जमाव अधिक देर तक नहीं टिकता। लोगों ने देखा तूफ़ान के बाद धुली प्रभात की तरह महाराणा शांत थे। मस्तक पर चिन्ता की रेखायें गहरी हो उठी थीं और चेहरा उदास । प्रताप की बुझी आँखों में भी भील सरदारों ने उनका मन्तव्य पढ़ लिया। निवेदन किया- "क्षमा करें महाराणा ! देशद्रोह की यह घटना हल्दीघाटी के नाम पर पहला कलंक है। हम इसे अपने रक्त से धोकर अवश्य उज्ज्वल करेंगे।"

प्रताप ने एक गहरी साँस ली- "इस कालिमा को धोना इतना सरल नहीं भीलराज ! एक निरीह चरवाहे की हत्या से यह ज्वार शांत नहीं हो सकता । द्रोह के मुख्य कर्णधार तो महलों की छाया तले पल रहे हैं, हाथियों पर झूल रहे हैं और दरबारों में मसनद लगाये बैठे हैं।"

भीड़ में से एक ऊँची आवाज आई - "मान सिह !!" दूसरी आवाज- "मान नहीं, अकबर का साला कहो ।"

तीसरे व्यक्ति ने तिरस्कार के स्वर में कहा- "अरे मान के आगे तो पहले ही मुसल लग चुका है....."

सारी भीड़ ने एक स्वर से दुहराया - "मुसलमान ! हः हः हः बस अब पीछा करना बाकी है।"

क्षणभर के लिए अरावली-शैलों के शून्य शिखर भीलों के भयंकर अट्टहास से गूंज उठे । पहाड़ के निश्छल प्राणियों को क्या पता था कि कल ही 'अकबर का साला' एक विशाल सेना लेकर उनकी छाती पर चढ़ा चला आ रहा है। साथ होगा शक्तिसिंह, प्रताप का भाई.....

(२)

एक लाख सिपाही, पाँच हजार घुड्सवार, अस्सी राजपूत तथा मुगल सरदार और उनके बीचों-बीच मार्नासह अपने शाही हाथी पर सवार- एक भयंकर व्यूह बना लिया इन्होंने। घुड्सवार पाँच भागों में बँटे थे-सौ सवार आगे, शेष चार नाकों में फैले हुए। पीछे मदमस्त हाथियों की विशाल सेना का पहरा था। हल्दीघाटी मैदान इस साज से आज तक कभी न सजा था। एक तरफ था मुगलों का समूचा संगठित साम्राज्य और दूसरी ओर अकेला प्रताप; उसके साथ थे मुठ्ठी भर सिपाही- केवल बाईस हज़ार भील और राजपूत बाँकुरे।

अब तक प्रताप भीतर ही भीतर उबल रहा था। अब आवेश को न रोक सका। भीलों ने तलवारें खीच लीं। राजपूतों ने बाण-वर्षा आरम्भ कर दी। सैनिक आगे बढ़े। घोड़े हवा से बातें करने लगे। राजपूतों का पहला हमला मुगल सेना के दक्षिणी भाग पर हुआ। प्रताप की सेना घाटी से निकल कर शत्रुओं पर टूट पड़ी। एक दूसरे पर घातक वार होने लगे। तलवारें छपाछप चल रही थीं। घमासान युद्ध मचा हुआ था। खूब लोहे से लोहा बज रहा था। भीषण मारकाट होने लगी, जिससे धरती लाल हो गई।

प्रताप की सेना में सैनिक अधिक नहीं थे किन्तु साहस अपार था। अपने वीर नेता के नेतृत्व में सैनिक उछल-उछलकर आगे बढ़ने लगे। उन्होंने प्राणों का मोह छोड़ दिया था। वे आन्धी और तूफ़ान बन गये थे। उनमें बिजली की शक्ति थी। लगा जैसे दुनिया की कोई शक्ति उन्हें रोक नहीं सकेगी। आज उनके बाहुबल की परीक्षा का दिन है। आज वे अपने हाथों रणचंडी को मुण्ड-मालाएँ पहना रहे थे। एक-एक सौ-सौ से लड़ रहा था। मेवाड़ की छाती पर रणताण्डव हो रहा था। संख्या में अधिक होकर भी मुगल सैनिक राजपूतों के सामने टिक न सके। वे मैदान छोड़कर भागने लगे। फिर क्या था ? राजपूत सैनिक कबूतरों पर बाज की तरह टूट पड़े। उन्होंने दौड़ा-दौड़ाकर, थका-थकाकर एक-एक को मारा। भील लोग अपनी वीरता से तुर्कों को चीरते-मारते दाएँ-बाएँ प्रलय मचा रहे थे। उनकी मार से मुगल सेना समाप्त ही हो चला था कि मानसिंह ने बड़ी योग्यता से काम लिया। उसने का दक्षिण भाग बिल्कुल दब-सा गया था। सेना का वह अंग सलीम को ताजा-दम सेना देकर तुरन्त वहाँ भेजा। दक्षिण भाग गिरते- गिरते बचा। डूबते को तिनके का सहारा मिल गया।

लेकिन प्रताप भी आँखें बन्द किये नहीं बैठा था। वह तुरन्त मुगल सेना को चीरता हुआ आगे आया, जैसे मेघ को चीरती हुई बिजली निकल जाती है। आज उसका क्रोध अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया था। उसकी नंगी तलवार मुगलों के सिर पर धड़ाधड़ गिरने लगी। आफ़त-सी आ गई। एक के बाद एक सैनिक धराशायी होने लगे। 'अल्लाह-अल्लाह' की पुकार मच गई। मुगल सैनिक टिक नहीं पा रहे थे। प्रताप के आक्रमण भयानक थे। जैसे ही उसने बाण का एक अचूक निशाना लगाया वैसे ही सलीम का महावत धड़ाम से धरती पर जा गिरा।

अब सलीम की इच्छा भी भागने की थी। प्रताप के बाणों से उसका रोम-रोम बिंध गया था, वह बुरी तरह घायल था, पर बीच में घिरा हुआ था। प्रताप उसका रास्ता रोके खड़ा था, भागना मुश्किल था। तभी एक भयानक घटना घटी। प्रताप ने तलवार का एक ऐसा भयंकर वार किया, जिसने सलीम के हाथी की सूंड काट डाली। हाथी चीख उठा। चिंघाड़ता हुआ पीछे को भागा। मुगल सेना पर एक नई विपत्ति आ गई। उसके पावों तले हजारों मुगल सैनिक कुचले गये।

इधर युद्ध छिड़ने से एक बात यह हुई कि मुगलों के दक्षिण भाग पर राजपूतों का ज़ोर तो बढ़ गया पर बायाँ भाग उपेक्षित रह गया। राजपूत सेना के अगले भाग और पिछले भाग में काफी अन्तर पड़ गया। मानसिंह ने इस अवसर से लाभ उठाया और उसने स्वयं बायें भाग पर भयंकर आक्रमण कर दिया। प्रताप दूर से उसकी इस कुचाल को ताड़ गया। सच पूछो तो वह मानसिंह की खोज में ही तो था। उसने चेतक को एड़ लगाई और शत्रुओं को तीर-सा चीरता हुआ मानसिंह की ओर बढ़ने लगा। जो भी उसके सामने आया उसके दो ही परिणाम हुए-या वह भागा, या वह लुढ़क गया। चिश्ती भागा, शेख भागा, तथा काजी खाँ का हाथ ही कटकर जाता रहा। स्वयं आसफखाँ को दुम दबाकर भागना पड़ा। प्रताप से मार खाकर मानसिंह के पक्ष के कई राजपूत, जो भी भागे थे, बनास नदी के पार पाँच-छः कोस तक भागते ही चले गये।

अब प्रताप और मानसिंह आमने-सामने थे। दो राजपूतों की टक्कर थी, बल्कि यों कहिये कि दो बिजलियाँ कड़क रही थीं। भयंकर युद्ध हुआ। प्रताप कुछ देर तक तो अंधाधुन्ध लड़ता रहा, पर शीघ्र ही उसे याद आया कि वह वहाँ निपट अकेला है। सब साथी बिछड़ गये हैं। उसने विलम्ब न किया और

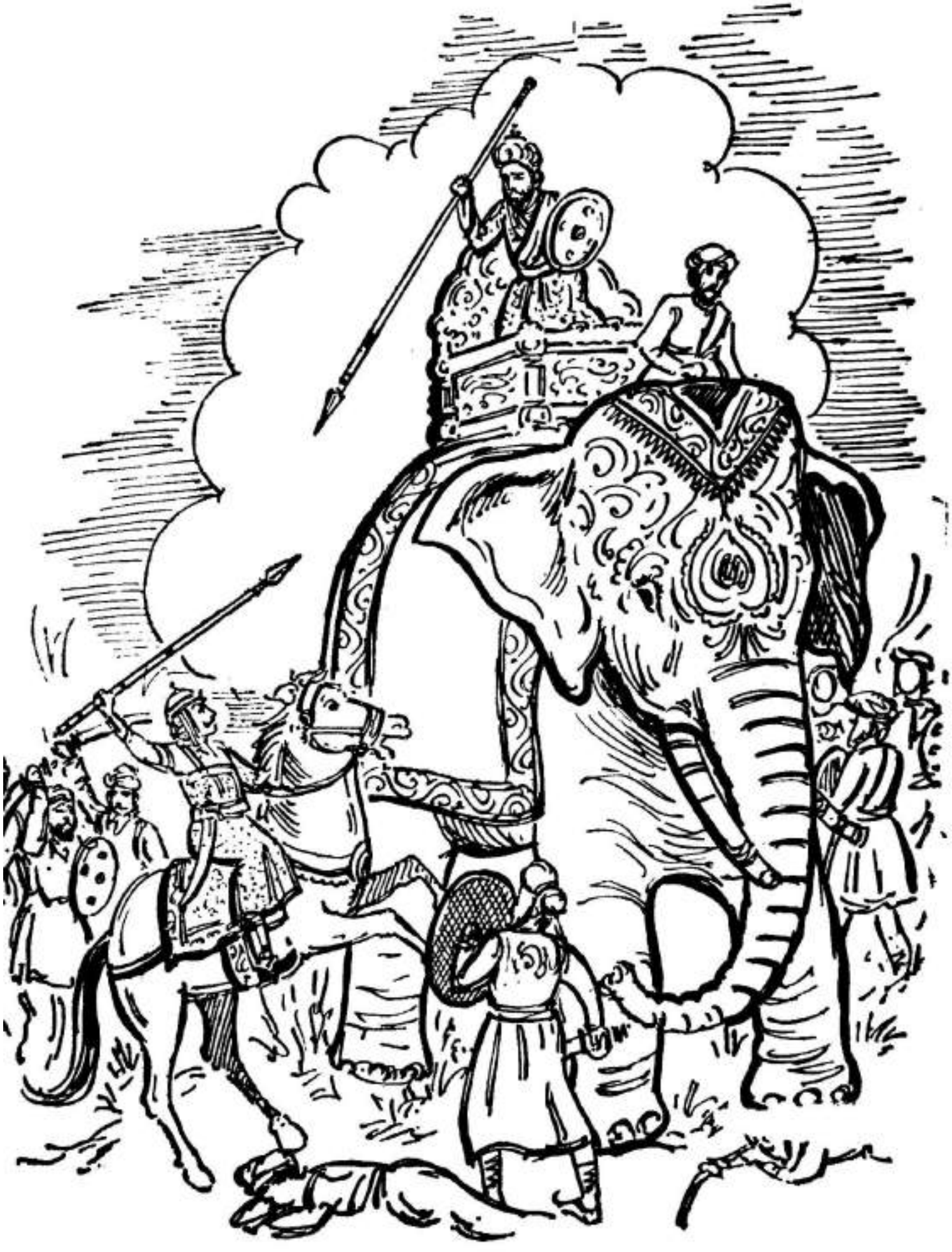

चेतक को ऐसी एङ लगाई कि उसने मासिंह के हाथी के मस्तक पर अपने दोनों अगले पाँव जमा दिये। प्रताप ने खींचकर भाले का भरपूर वार मानसिह पर किया। भाला लोहे के हौदे से टकराया और झन्नाकर महावत के शरीर में धँस गया। महावत छलनी होकर गिर पङा, पर मानसिंह का हाथी चिंघाङता हुआ उसे ले भागा।

अब प्रताप अकेला था। उसे काफी चोटें लगी थीं। घावों से शरीर छलनी हो गया था। शरीर से अत्यधिक रक्त बह चुका था। सेनापति महतराँ ने बहादुरी दिखाने का यह अच्छा अवसर देखा। वह ताजा-दम था, प्रताप पर पिल पङा वह। इनाम पाने का लोभ सिपाहियों को भी था। वे भी प्रताप पर चारों ओर से टूट पङे। उमङती सेना में प्रताप ऐसे खो गया जैसे बादलों में सूर्य-लाखों में एक।

(३)

गुप्तचर-अल्लाह की कसम, प्रताप अभी जिंदा है, मैंने खुद उसे बनास नदी के पार उतरते देखा है। मैं झूठ नहीं बोलता जनाब ! यकीन जानिये, महाराणा प्रताप अभी नहीं मरा है और वह अरावली के पहाङों में सुरक्षित है।

सलीम-पर महतरखाँ कसम खाता है कि उसने खुद अपने हाथों प्रताप का सिर धङ से अलग कर दिया है। कहीं तुम्हें गलती तो नहीं लगती, गुप्तचर !

गुप्तचर-गलती मुझे नहीं लगती, राजकुमार ! गलती लगती है सेनापति महतरखाँ को, जिसने मन्ना जी को प्रताप समझ लिया और उसे मारकर तीसमारखाँ बनना चाहता है। राजपूतों की कलाबाजी को वह क्या जाने ? अभी वह बच्चा है।

सलीम बैठा था। तुनककर खङा हो गया- यह तुम क्या कह रहे हो मानसिंह के गुझचर

गुप्तचर-मैं ठीक कह रहा हूँ राजकुमार ! राजपूत लोग प्राणों की बाजी लगाना भी जानते हैं और कलाबाजी भी। युद्ध में-जब हमारी सेना ने प्रताप को चारों ओर से घेर लिया तब उसे ढूंढते-ढूंढते मन्ना जी उधर आ निकले। उन्होंने प्रताप के प्राणों पर बनी देखकर झटपट मेवाङ का राज्य-चिह्न उनके सिर से उतार लिया और अपने सिर पर धारण कर

लिया। बस, हमारी सेना उन्हें ही प्रताप समझ कर उन पर टूट पडी और असली प्रताप सबकी आँखों में धूल झोंक कर नदी के पार अरावली में खो गया है, हमारी नींद हराम करने के लिये।

सलीम की आँखें फट गईं, हाथ-पैर टूट गये और मुँह खुला का खुला रह गया-हाय! हमारी एक लाख की कुर्बानी।

गुप्तचर-सब व्यर्थ। प्रताप इस युद्ध में हारकर भी जीत गया है. राजकुमार ! और हम जीत कर भी हार गये हैं।

शेर की घात में शिकारियों को ऐसे स्थान पर बैठना आवश्यक था जहाँ से उसके पानी पीने का स्थान शिकारी के लिए निकट-से-निकट पड़ता हो।

क़िला सितारशाह के ठीक नीचे रावी नदी एक छोटा-सा मोड़ काटती है। इससे कुछ हटकर थोड़े खुले में एक बड़ा-सा पेड़ था, ऊँचा, घना और पत्तियों से लदा हुआ। सात-आठ डालों की एक आर-पार मिलावट पर हरिया ने एक मचान बाँधा। महाराज उस पर ऐसे निश्चिन्त बैठ गये जैसे किसी ने वहाँ खटिया बिछा रखी हो। वहाँ से दूर तक जंगल का दृश्य साफ दिखाई देता था।

नदी से करीब पन्द्रह गज दूर बाँसों का एक घना झुरमुट था। साथ ही वहाँ सरकंडा और कुछ झड़बेरी भी हो गई थीं। हरिया ने झाड़ काट कर उसमें तीन झरोखे दाएँ, बायें और सामने इस प्रकार बना लिए कि वह तो शेर को देख सके पर उसे शेर न देख पाये।

तय यह हुआ कि हरिया झाड़ियों की आड़ में बैठे और हकारे तथा दूसरे शिकारी दूर किसी पेड़ पर या दालान में शेर की प्रतीक्षा करें। वे तब तक अपने स्थान से न हिलें जब तक हरिया की सीटी न बजे। झाड़ियों में स्थान इतना कम था कि वहाँ दो ही बैठ सकते थे।

हरिया की कुल्हाड़ी आगे झाड़ियों पर खटाखट चल रही थी। अचानक ही बादल की-सी गरज हुई और एक भयानक सिंह बिजली की तरह तड़प कर हरिया पर गिरता नजर आया। सिंह का यह आक्रमण इतना तेजी से हुआ कि हरिया को अपनी तलवार भी म्यान से खींचने का अवसर -न मिला और कुल्हाड़ा झाड़ियों में उलझा रह गया। सोचने का समय नहीं

था। इससे पहले कि सिंह हरिया के अंगों को जबङे से पीस डाले या नुकीले नखों से उसे चीर-फाङ डाले, हरिया ने अपने फौलादी हाथों से उसके दोनों जबङे पकङ लिए और उसकी गर्दन मरोङने लगा। सिंह और हरिसिंह का इंद्र था। नहीं-नहीं, जीवन और मृत्यु का संघर्ष। दो मिनट तक यही द्वंद्व चलता रहा। दोनों गुत्थम-गुत्था होते रहे। कभी हरिया एक क़दम आगे और कभी सिंह एक क़दम पीछे । शेर आखिर शेर ही है। वह बङा फुर्तीला होता है। सहसा वह हरिया के शिकंजों से निकल कर एक ओर जा गिरा ।

अब हरिया को केवल इतना समय मिल सका कि वह झाङियों में से कूद कर खुले मैदान में उतर आया। शेर ने भयंकर गर्जना की और छः फुट ऊँचा उछल कर हरिया पर दूसरा आक्रमण किया। इस बार हरिया भो सावधान था। उसने तलवार भी म्यान से खींच ली थी। शेर अभी उससे दो फुट दूर आकाश में ही था कि हरिया ने तलवार के एक ही बार से उसका सिर घङ से अलग कर दिया।

जलवा की ओर भागे मानो उन्हें कोई दुर्लभ वस्त प्राप्त हो गई हो, जिसकी यह देखकर महाराजा रणजीत सिंह से न रहा गया। वे ऊँची मचान से महाराजा रणजीत से कहर विना ने पाँव हरिसि

उन्हें चिरकाल से प्रतीक्षा हो। उन्होंने हरिया को गले लगा लिया और उन मुख से सहसा निकल पङा - "सेनापति हरिसिंह !"

'सेनापति' संबोधन ! हरिसिंह चौंका। वह तो एक साधारण सिपाही है। इतना बङा सम्मान ! वह विश्वास न कर सका। एकटक महा- राजा की और देखता रह गया । महाराजा ने उसकी पीठ थपथपाते हुए घोषणा की-

"शाबास बहादुर । मुझे एक ऐसे ही वीर सेनापति की खोज थी जो सीमा-प्रांत के हिंस्रक कबाइलियों पर विजय प्राप्त कर सके । वे पहाङियों में रहते, झाङियों में दुबकते और सहसा लोगों पर टूट पङते हैं- जंगली शेर की तरह ! इसी उद्देश्य से मैंने शेर के शिकार का आयोजन किया था। शिकार की आङ में योग्य सेनापति को ढूंढ निकाला है। इस चुनाव में तुम विजयी हुए हो । हरिसिंह, इस परीक्षा में तुमने सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया है।"

महाराजा रणजीत सिंह ने अपने हाथों सेनापति का पदक हरिसिंह नलवे की छाती पर अंकित किया ।

(२)

अटक नदी के साथ-साथ हजारों मील लम्बा-चौङा क्षेत्र अफगानों के अधीन था। नलवे को आदेश मिला "जनहित के लिए अफगानों का दुमन करना होगा।" वह सिपाही ठहरा, आठ पहर चौंसठ घङी कमर बाँधे तैयार। टूट पङा वह अफगान इलाके पर, तूफ़ान की तरह । आगे भी कोई गीदङ नहीं थे। अफगान थे, वे अफगान जिनकी गोली का निशाना अचूक है, जिनकी दोस्ती का मतलब जीवन और जिनसे शत्रुता का मतलब मृत्यु होता है। उनका सरदार फ़तहाँ और वह भी दबंग । करेला आगे ही कङवा फिर नीम चढ़ा। उसका भाई दोस्त मुहम्मद नहले पर दहला। सैकङों के छक्के छुङाये थे उसने, हजारों को मौत के घाट उतारा था उसने। किसी को कुछ समझता ही न था वह। अकङकर आया वह और कहने लगा-बहुतेरे रणजीत देखे हैं मैंने- देखें यह नलवा किस खेत की मूली है। पर नलवे सा उसे कोई न टकरा था। नलवा उससे ऐसे आ मिला जैसे डाल से तलवार मिलती है।

घमासान युद्ध मच गया। खूब लोहे से लोहा बजा । नलवा साक्षात् यम के समान लङ रहा था। वह अफगान सेना पर अकेला ही-ऐसे टूट पङा जैसे हाथियों के झुंड पर भूखा शेर। बिजली की तरह उसकी कृपाण

चारों ओर चमकती और शत्रु-मुण्डों को गाजर-मूली की तरह चीरती जाती। जंगल की आग की तरह उसने दुश्मन को भस्म करना शुरू कर दिया।

लङाइयाँ होती हैं; सेनाएँ कटती हैं, लोग मरते हैं, पर तोबा ! नलवे के हाथ से भगवान् किसी को मौत न दे। दौङा-दौङाकर मारा उसने, भगा- भगाकर, थका-थकाकर अफगानों का सफाया किया उसने । वह जिधर निकल जाता उधर ही प्रलय मच जाती। कोई गिरा, कोई मरा, कुछ मछलियों की तरह तङपते, कुछ पानी के लिए तरसते । आफ़त की तरह अचानक फिर नलवा आ धमकता ।

"बोलो-मरना चाहते हो जीना ?" नलवा पूछता ।

"मरना।" सिपाही गिङगिङाते ।

"तो बोलो 'पंजाब केसरी' महाराजा रणजीतसिंह की जय !" नलवा की शर्त गूंजती ।

मरता क्या न करता ? नाक रगङता, कान पकङता, जय बोलता और बार-बार बोलता । जो जरा इधर-उधर करता उसे नलवे का घोङा ही खुरों ते खड्ड में धकेल देता जैसे खेत में पङा बेकार कंकर हो ।

अफगानों ने जी-भर जुल्म ढाये थे, जीवन भर अत्याचार किये थे। आज नलवा उनका धर्मराज था, उसे देखकर तोबा-तोबा चिल्ला उठे। चारों ओर 'अल्लाह-अल्लाह' की पुकार मच गई।

नलवे को देखकर उसकी सेना ने भी रंग पकङा। सिंहों के जन-सागर में हलचल मच गई, जैसे दूध में उबाल, जैसे समुद्र में ज्वारभाटा ! सैकङों - सवार तलवार नचाते, भाले चलाते और जयकारे मार रहे थे-'हरिसिंह नलवे की जय'-'महाराजा रणजीतसिंह की जय !' नगाङों की घोर ध्वनि से पहाङ, आकाश, घर, दीवार सब गूंज रहे थे। उनके पीछे हजारों दूसरे घुङसवार घोङे नचाते, तलवारें घुमाते, शत्रुओं पर प्रलय ढा रहे थे। नलवे की सेना में सैनिक अधिक नहीं थे किन्तु साहस अपार था। अपने बहादुर नेता के नेतृत्व में सैनिक उछल-उछल कर, कूद-कूद कर झपटने लगे। उन्होंने प्राणों का मोह छोङ दिया था, दया को त्याग दिया था और बस, तूफ़ान की तरह थलथली मचा रहे थे ।

उघर संख्या में अधिक होकर भी अफ़गान लोग नलवे के आगे टिक न सके। एक-एक सिंह ने गिन-गिनकर सौ-सौ अफ़गानों का सफाया किया। दोस्त मुहम्मद के छक्के छूट गये । उसकी सेना भाग खङी हुई। सिपाही सिर पर पाँव रखकर भागे । फ़तहखाँ की फ़तहगीरी सबसे आगे उङती नजर

आई। सब अपने-अपने प्राण लेकर भागे। पर भागकर जायें भी तो कहां?

जिधर भगौडे जाते उधर ही नलवा। नलवे के हाथों जिस-जिसने मार खाई उसे एक-एक नलवे के हजार-हज़ार नलवे दिखाई देने लगे। वे जिसे मूंछों वाला देखते उसे ही 'नलवा' कहकर पीछे को भाग खडे होते। पगडियाँ उछल जातीं। तलवार कहीं गिरती, ढालें कहीं। सामने खड्ड खडा है, उसमें गिरना मंजूर, पर नलवे से एक बार बच तो निकले। पेड से टकरा कर हड्डी-पसली चूर-चूर हो जाये, वह ठीक, पर नलवे के हाथ पडना मंजूर नहीं। मौत अच्छी, पर नलवा नहीं।

अफ़गान काँप रहे थे, हाँप रहे थे, डर रहे थे, पसीने से तर हो रहे थे, "हाय नलवा-हाय नलवा !" की पुकार मच गई। एक अफ़गान के प्राण नहीं निकल रहे थे, उसने 'नलवा' नाम सुना तो अगले ही क्षण उसके प्राण काफूर हो चुके थे। एक अफ़गान दम तोडने लगा, उसने 'हाय तोबा' कहना चाहा, पर नलवे का इतना डर उसपर पर छाया हुआ था कि उसके मुँह से 'हाय नलवा' ही निकलता।

इधर अफ़गान सिपाही सैंकडों, हजारों की संख्या में या प्राण छोड रहे थे या रण से दौड रहे थे। उधर नलवे के सैनिक जयकारे बुला रहे थे-

"हरिसिंह नलवे की जय !"

"महाराजा रणजीतसिंह की जय !"

गडगड, गडगड धडाधड, धडाधड घोडों की टपटप, रथों की खटखट... हा-हा-हू-हू का शोर... दौडमदौड सहसा हल्ला हो गया। विराटपुरी काँप उठी । थरथर-थरथर तथा बाणों की सरसर, गदाओं की घमाधम, कटारों की कटाकट, भालों की खटाखट- भयंकर भिडंत हो गई।

लोग भागे, बेतहाशा भागे। कोई गिरते हुए भागा, कोई सिर पर पैर रखकर भागा, कोई जीने के लिए भागा, कोई मरने के लिए। 'सब भाग रहे हैं' इसलिए बाकी भी भागे, कोई पीछे कोई आगे।

"दुरिया आया ! दोडो रे दौडो !"
"कनिया आया ! भागो रे भागो !"
"हाय ! हमारी गाएँ, लुट गये रे, लुट गये !"
"लूट ले गये, छीन ले गये, भागो-भागो !"
भगदड मच गई, भागमभाग ।

नर्तक ने राजमहल से देखा। बैठा था, खडा हो गया। आँखों में खून उतर आया। क्रोध से काँपने लगा। पैरों में पायल स्वतः झनझना उठी । कलाई के कंगन स्वतः बज उठे ! नर्तक ने खिडकी में उचक कर झाँका- प्रजा त्रस्त है, जीवन अस्त-व्यस्त है, दूर तक लोग भागे चले जा रहे हैं। स्त्रियाँ भाग रही हैं, बच्चे भाग रहे हैं, लडकियाँ सिसक रही हैं और लडके बिलख रहे हैं।

पर सैनिक कहाँ हैं ? निकलते क्यों नहीं ? हल्ला, लूटखसूट । त्यौरियाँ चढ़ गई, घडधड-घडघड सीढ़ियों पर पडे उसके कदम। पायल जोर से बज उठे। घूंघरू जोर से छहरा उठे। कंगन जोर से कडकने लगे। नर्तक का भरतनाट्यम् शिव-तांडव में बदल गया-धमाधम-धमाधम, तडप-तडप,

कङक-कङक । जीना बज उठा । सीढ़ियाँ सनसनाने लगीं। राजभवन भैरवः झंकार से भर गया। अगले ही क्षण नर्तक राजकुंवर के कक्ष में खङा था-

"उत्तर" नर्तक ने चुनौती के स्वर में पुकारा। राजकुमार स्तब्ध था, मौन, चुपचाप !

"इतना समय नहीं है राजकुमार ! उठो और धनुष उठाओ, चलो, देखो कौन उद्दण्ड तुम्हारी प्रजा पर अत्याचार ढा रहा है ?"

गली में चीखें सुनाई दीं- "दुरिया आया, भागो-भागो ! कनिया आया भागो, भागो !" राजकुमार काँप रहा था। बैठा था। बैठा रह गया । खङा तक न हो सका, टांगों का बल जैसे चू चुका हो । मुँह से चूं तक न निकली। केवल काँप रहा था वह थरथर, थरथर ।

नर्तक का आवेश रस्सियाँ तोङने लगा। उसने लपक कर राजकुमार का कन्धा झकझोर दिया और खींचकर खङा कर दिया उसे ।

"शाही नर्तक की इतनी मजाल!"- राजकुमार भङक उठा । उसका हाथ तङपकर तलवार की मूंठ पर पङा ।

नर्तक गरजा "शाबाश, राजकुमार ! निकाल लो तलवार। पिल पङो निहत्थे नर्तक पर, कत्ल कर डालो उसे । पर सावधान ! दुनिया के सामने कहीं यह हरकत मत कर डालना । तलवार है उसके हाथ में भी । सेना है न उसके साथ। सुना है बङा खौफनाक है वह । खून पी जाता है।"

राजकुमार को काटो तो खून नहीं। काठ मार गया उसे । जैसे हाथ वहीं का वहीं जम गया हो ।

"तुम्हें युद्ध करना पङेगा, उत्तर !" नर्तक ने ललकारा ।

"मेरी वीरता को चुनौती मत दो नर्तक ! मैं क्षत्रिय हूं, चुटकियों में ले बीतूं दुरिया को, खटमल की तरह मसल डालूँ कनिया को, पर, काश ! आज कोई चतुर सारथी मुझे मिल जाता ।"

द्वार के पीछे से ठहाका फूट पङा- हः हः हः हः !!! क्षत्रिय पुत्र हैं ये-चुटकियों में मसल डाले दुरिया को, खटमल को तरह पीस डाले कनिया को। कभी लङाई के मैदान की सूरत भी देखी है। हः हः हः हः ! चतुर सारथी दिला दो इन्हें । हः हः हः हः ! खूब बहाना ढूंढा ! न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी। राधा नाचे न नाचे, आओ राजकुमार हम तुम तो नाचें, छम छमाछम-तलवार मत पकडियो, हाथ में छाले पङ जाएँगे। कवच मत बाँधियो, कमर दुखने लगेगी। यह लो घरिया, घूंघरू और पायलिया ।

कनिया के सामने मत जइयो। बङा जालिम है वह। पायजामा बिगङ जाएगा तुम्हारा। हः हः हः हः

रणवास के करारे व्यंग्य की फाँस राजकुमार के हृदय में चुभ गई। नर्तक ने हवा को पहिचाना- "उत्तर ! तुम्हें सारथी चाहिये न। मैं तुम्हारा सारथी बनूंगा।"

तुम ! नर्तक और मेरे सारथी !" राजकुमार चौंका। "

"हाँ मैं तुम्हारा सारथी बनूंगा। रंगशाला में मैं राजकुमारियों को नचाता हूँ ? अब मैं युद्धभूमि में तुम्हारे घोङों को नचाऊँगा।" उसके मुह से निकल गया - "वाह ! घर में ही वैद्य तो मरना कैसा !"

अगले ही क्षण रथ इस तेजी से राजकुमार को ले उङा मानो बिजली कौंध गई हो।

नगर के बाहिर धूल उङती दिखाई दी। स्पष्ट था, शत्रु लूट का सामान लेकर चम्पत हुआ जा रहा है। नर्तक ने रथ को तेज कर दिया। पास, और पास, बिल्कुल पास-शत्रु कुछ हाथ दूर भागते दिखाई दिये। सब साफ दिखाई दे रहा था। छाँट-छाँटकर गौएँ हाँक रहे थे। चुन-चुन कर बैलों की जोङियाँ खदेङ रहे थे, देख-देखकर घोङों के झुंड पकङ रहे थे। जिन चरवाहों ने चूँ भी किया दुश्मन ने उनकी मुश्कें बाँध लीं। उन्हें भी वे बैलों पर लादकर लिये जा रहे थे मानो वे हाङ-माँस के मनुष्य नहीं, काठ-पत्थर का कोई सामान हो। घोङे भी लदे हैं, ऊँट भी लदे हैं, हाथी तक भार से दबे जा रहे हैं। ऊँटों की तो कोई गिनती ही नहीं। इतना धन लूटने पर क्या वे सब अपने घर ले जाएँगे ? हमारा नगर अनाथ हो जायेगा। गडरिये उजङ जाएँगे, चरवाहों का सर्वनाश हो जायेगा, बनिये नष्ट हो जाएँगे, दाने-दाने

को तरसेंगे हमारे लोग और-लुटेरे घर जाकर गुलछरें उङायेंगे आदि। "नहीं, अपने नगर की एक सुई भी लुटेरों के हाथ न जाने देंगे हम।" नर्तक ने बेतहाशा रथ दौङाया और लुटेरों की राह रोक कर खङा हो गया। "देखते क्या हो राजकुमार ! दुश्मन तुम्हारे सामने है और धनुष- बाण तुम्हारे हाथ में, एक-एक को सुला दो मैदान में।" नर्तक ने उसे प्रोत्साहन देते हुये कहा।

उत्तर ने धनुष उठाया। देखा दुरिया सबसे आगे खङा है। बङी-बङी मुंछे, भारी-भरकम मांसल चेहरा, हाथी-सी भयंकर देह, लाल-लाल आँखें। अरे हाथ में गदा भी है उसके - भाला भी, तलवार भी। कनिया भी पास हो

खडा है। चमचमाते बाणों से उसका तरकस भरा है। सुनते हैं निगोडे के पास ऐसे-ऐसे शस्त्र हैं कि वे इन्सान को ले कर आकाश में उड जाएँगे। बेचारे की धूल तक नीचे नहीं उतरती । बाप रे बाप ! भीष्म दादा भी खडे हैं, किरपाजी, द्रोणजी.... राजकुमार की छाती काँप उठी ।

उत्तर ने रथ लौटाने का आदेश दिया, पर रुकता कौन, नर्तक ! वह तो रथ को आगे ही आगे हाँके लिए जा रहा था ठीक दुश्मनों के बीच । उत्तर ने पीछे से छलाँग लगा ही तो दी और फिर भागा अपने प्राण लेकर ।

"भागकर कहाँ जाओगे, कुमार !" नर्तक ने कुछ दूरी पर उसे जा बकडा ।

"मुझे छोड दो नर्तक ! परमात्मा के वास्ते मेरे प्राण बख्श दो। राजकुमार गिडगिडाया ।

नर्तक ने नंगी कटार राजकुमार की गर्दन पर रखदी- "जीवन चाहते हो तो यह युद्ध-क्षेत्र है, मृत्यु चाहते हो तो यह कटार है। बोलो क्या चाहते हो ? यदि प्राणों का इतना ही मोह है तुम्हें, तो लाओ अपना धनुष-बाण, मैं स्वयं दुश्मन से निपट लूंगा। केवल तुम घोडों की बागडोर हाथों में थामे

रहो। मेरे रहते तुम्हारा बाल भी बाँका न होगा।"

रथ फिर लौट पडा। नर्तक के पायल फिर बज उठे। घूंघरू फिर बहरा उठे। वह फिर नर्तक से प्रलयंकर शंकर हो उठा ।

नर्तक ने बाणों की वर्षा आरम्भ करदी। बाण नहीं, फुंकारते हुए नाग ये वे। सरति हुए धनुष से छुटते और चिरति हुए दुश्मन की छाती में चुभ जाते । बाणों के लिए कोई दिशा अनजानी न रही, कोई छाती अछूती न रही, कोई अंग उनसे अलग न रहा, कोई वीर न बचा जिसे उन्होंने चीर न दिया हो ।

दाएँ-बाएँ, आगे-पीछे, पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दवखन-जिधर देखो नर्तक के बाण ही बाण दिखाई देते । सूर्य की किरणें भी शायद इतनी न हों, जल के कण भी शायद कम हों, पर नर्तक के बाणों की कोई गिनती न थी। सूर्य भी छिप गया उनकी ओट में, बादल भी ढक गये उनसे। कनिया भी छिद गया, दुरिया भी छिल गया, भीष्म दादा के भी अंग-अंग पिरोये गये, किरपा जी मानो सिल गये। इसी दशा में न जाने कब तक वे अचेत अधमरे पडे रहे।

जब उन्हें होश आया तो सारी लूट, पशु-धन और रत्न-धन सब गायब - और साथ ही उनके शरीरों पर से गायब थे उनके वस्त्र। वे धूल में अधनंगे

लुढ़क रहे थे। केवल भीष्म दादा, किरपाजी और द्रोणजी के वस्त्रों को किसी ने छुआ तक नहीं था। यह क्यों ?

किरपाजी ने अनुमान दौड़ाया "कहीं अर्जुन बेटा तो नहीं था वह ?" दुरिया का संदेह पक्का हुआ-"ये तीखे बाण तो अर्जुन के से ही थे।" कर्ण ने अनुमोदन किया- "अर्जुन के सिवाय किसी में दम नहीं कि मेरे कवच को छेदकर भी छाती छील डाले। वही है वह।" भीष्म दादा से न रहा गया- "तभी मैं कहूँ कि युद्ध से पहले उसने बाण मेरे चरणों में क्यों छोड़ा ?"

द्रोण ने कहा- "मैं भी हैरान था कि बाणों से चरण-वन्दना करने वाला यह कौन है।" दुरिया को कुछ सूझा, चुटकी बजा कर बोला- "अहः ! कर्ण भैया ! अज्ञातवास में अर्जुन को हमने पहिचान लिया है। अब उसे नियमानुसार एक बरस और अज्ञातवास करना होगा।"

कनिया ने याद करके निर्णय दिया- "पर दुर्योधन जी ! आज अज्ञात- वास की अवधि समाप्त हो चुकी है, अब हम अर्जुन का बाल भी बाँका नहीं कर सकते।"

दुरिया - "हाय ! मैं तो लुट गया !"

उस दिन आकाश इतना नीला था कि दूर क्षितिज तक कहीं कोई बादल-बदली दिखाई न देता था। चढ़ते सूर्य की लालिमा सुदूर ऊँचे हिम- शिखरों पर खडी मुस्करा रही थी। तेंजिग ने देखा, उसके अंतर में भी एक किरण मुस्करा उठी, आशा की किरण। उत्साह से उसका भी हृदय भर उठा। गर्व से उसका भी अंग-अंग पुलकित हो उठा। आज का यह आत्म- विश्वास और उल्लास उसके हृदय में समा नहीं रहा था। किस पर प्रकट करे, वह अपने हृदय की उमंग ?

कागज-कलम लेने वह खेमे की ओर लपका, काँपते हाथों से उसने एक पत्र लिखा, अपनी पत्नी के नाम :-

मेरे लिए कोई चिन्ता न करना। इस बार मैं पर्याप्त स्वस्थ हूँ और मेरा विश्वास है कि मैं एवरेस्ट शिखर पर विजय प्राप्त कर लूंगा। तुम अपना और बच्चों का ध्यान रखना। तीनों का एक इकठ्ठा फोटो भेज दो तो अच्छा हो।

सभी मित्रों और पडोसियों को मेरा अभिवादन कहना

तेंजिग" और उसके बाद तेंजिग फिर संघर्ष में कूद पडा। फिर वही बर्फ, फिर यही संचौर उसके बाद लेंजिन फिर संघर्षका बलता रहा और आरोही-दल पडाव पडाव आगे बढ़ता रहा।

एक अठवारा बीत गया। आठवाँ कैम्प नीचे रह गया, नयाँ खेमा गाङ दिया गया और आ पहुँची अठारह मई की तूफानी रात। उफ्! कितनी भयानक थी वह रात!

आँधी भयंकर वेग से चल रही थी। उसके थपेङों से खेमे के पर्दे ढोल की तरह बज रहे थे। यह धरती की हवा न थी, २८००० फुट ऊपर एवरेस्ट का कोप था यह। मौसम जैसे आरोहियों का हौसला पस्त करने पर तुल गया था। लगातार ३६ घण्टे तक आँधी चलती रही। एक क्षण के लिए भी वह न रुकी। बर्फ़ के नुकीले खंड उङ-उङ कर गोलियों की तरह बरसने लगे, मानो हिमालय ने अपने तोपखाने का मुँह खोल दिया हो। तंबू कङकङाने लगे। अंधङ के मारे बाहर झाँकना दूभर हो गया। धङाम से बर्फ की एक चौङी चट्टान कट कर नीचे आ गिरी - खेमे से कुछ हाथ दूर, सब आरोही बाल-बाल बचे। बार-बार चट्टानें सरकीं, वे बार-बार बचे। तेंजिग और हिलेरी को मारे सर्दी के रात भर नींद न आई। सारी रात करवटें बदलते, ठिठुरते और दाँत कटकटाते बीत गई। सुबह देखा उनके हाथ-पाँव नीले पङ चुके थे और नसें अकङने लगी थीं।

पर आकाश निर्मल था। एक छोर से दूसरे छोर तक कहीं कोई बादल न था। सूर्य पूरे वेग से चमक रहा था। पवन भी मानों अलसा गया था। ऐसा दिन, पर्वतारोहियों को बङे भाग्य से मिलता है।

दोनों पर्वतारोही जल-पान करके एवरेस्ट पर आखरी चढ़ाई के लिए चल दिये जहाँ आज तक मानव नाम के किसी प्राणी के कदम न पहुँच पाये थे। आगे-आगे तेंजिग और पीछे-पीछे हिलेरी।

तेंजिग पैरों से बर्फ हटाकर रास्ता बनाता जाता था। बर्फ काफ़ी थी। एक-एक कदम आगे रखने में मेहनत करनी पङती थी। रास्ता टेढ़ा-मेढ़ा था, क्योंकि शिखर के पीछे शिखर और उसके पीछे शिखर ही शिखर थे। एक पार करो तो दूसरा तैयार, दूसरा करो तो तीसरा। तेंजिग ने पर्वत-श्रेणी के पीछे की ओर से एक लम्बा चक्कर काटा और वे एक ऐसे शिखर तक पहुँचे जहाँ २८००० फुट की ऊँचाई पर एक बङा टीला बन गया था। यहाँ से पर्वत-श्रेणी छुरी की धार की तरह पतली हो गई थी। ऊपर से गरजती हुई हिम-राशि लुढ़क रही थी-बिना बताये, एकदम, धङाम से। जो कुछ सामने आता है उसे दफ़ना देती है। वे गिरती बर्फ़ के ढेर में इधर-उधर कतराकर चलने लगे।

जो स्थल बहुत अधिक कड़े थे वहाँ पैर रखने के लिए उन्हें बर्फ़ काटनी पड़ती थी। कभी-कभी तो बर्फ की चट्टानें तक काट कर हटानी पड़ती। वे धीरे-धीरे, पर लगातार चल रहे थे। बर्फ़ मुलायम थी, इसलिए आगे रास्ता बनाना कठिन भी था और खतरनाक भी। वे जरा बाईं ओर के ढाल पर नीचे उतर गये जहाँ हवा के कारण बर्फ़ की परत बन गई थी। यह परत बड़ी धोखेबाज निकली। कहीं-कहीं तो इतनी कड़ी कि दोनों का भार सह लेती और कहीं पाँव रखते ही कड़कड़ा जाती। वे गिरते-गिरते बचे।

९ बजे के करीब-करीब वे काड़ चुड़ फेस पहुँचे। यहाँ बर्फ़ कड़ी थी, मुड़ी हुई उँगलियों जैसे बर्फ़ के नुकीले भाले दायें-बायें लटक रहे थे। अब वे निकलें तो कहाँ से ? एक भी भाला सिर पर गिर पड़े तो बस राम ही राम है। चट्टानों को काट कर रास्ता बनाना- बस यही एक विकल्प था। वे थके बे, फिर भी पिल पड़े चट्टानों पर। उन्होंने बर्फ़ को साफ़ किया, ढालों पर सीढ़ियाँ काटी, जहाँ जरूरत थी हस्तावलम्ब लगाये। पक्के निशान लगाने की भी आवश्यकता थी ताकि वापिसी पर वे भटक न जायें, वे भी लगाये। इस संघर्ष में वे पूरी तरह थक गये। दो कदम चलते फिर आधार के लिए अपनी कुल्हाड़ियों पर झुक कर हाँपने लगते, रुक जाते, फिर दो कदम चलते। फिर थक जाते तो झट से बर्फ़ पर बैठ जाते। यही क्रम कई घण्टों तक जारी रहा।

कर्नल हंट निचले पड़ाव पर बैठा अपनी दूरबीन से यह रोमांचक दृश्य देख रहा था-

२९ मई, कोई दस बजे का समय था, जब दूर श्वेत एवरेस्ट शिखर के पास मैंने दो श्याम बिन्दुओं को ऊपर की ओर सरकते हुए देखा। निश्चय ही वे तेंजिग और हिलेरी थे। वे तेजी से आगे बढ़ते जा रहे थे। दो क्षण के लिए वे बिंदु सहसा स्थिर हो गये। शायद कुहरे ने उनका मार्ग रोक लिया था। दूसरे ही क्षण वे फिर आगे बढ़ने लगे। अब की बार पहले से भी तेज। जिस शीघ्रता से वे बढ़ते चले जा रहे थे उसे देखकर मुझे लगा कि अब कोई चीड उन्हें शिखर तक पहुंचने से नहीं रोक सकती। एवरेस्ट पर पहुंचने के लिए पिछले वर्षों तक जिन आरोहियों ने चढ़ाइयाँ की थी उनकी याद मुझे आई- गैलोरी ! हवाहन ! विलसन ! स्मिथ और आरथर ! सफलता उनके भाग्य में न लिखी थी और एवरेस्ट अब तक अजेय बना हुआ था। पर अब वे दोनों बिन्दु अठ्ठाइस हजार पाँच सौ फुट से ऊपर तक चढ़ चुके थे और

एवरेस्ट शिखर उनसे थोडी दूरी पर खडा मुस्करा रहा था। वे अब भी चल रहे थे।

पर सहसा दृश्य बदला। एक थकी-माँदी-सी छाया कुल्हाडे पर दुहरी होकर स्थिर हो गई। यह क्यों ? मेरा दिल धडकने लगा। जी में आया चिल्लाकर उन्हें पुकारू", "तेंजिंग-हिलेरी !" दूसरी छाया भी हिल-डुल नहीं रही थी। नहीं-नहीं, वहाँ मुझे कुछ भी दिखाई न दे रहा था- केवल वर्षा, ऊँचाई और कुहरा।

एवरेस्ट के दूधिया रंगमंच पर जीत और हार के बीच एक रोमांचक नाटक खेला जा रहा था और मैं एक दर्शक की भाँति उसे निचले पडाव पर खडा देख रहा था, अपना हृदय थामकर; काश ! कि बादलों के उस पर्दे के पार मैं झाँककर देख सकता कि नाटक का उपसंहार कहाँ है ?

"फिर क्या हुआ ?"

(३)

तेंजिग ने अपनी विजय की कहानी सुनाते हुए कहा- "फिर हम लगा- तार एक घंटा चलने के बाद चालीस फुट ऊँची एक चट्टान की जड में पहुँचे। यह इतनी चिकनी थी कि हाथों की पकड और पाँवों की जकड के लिए कहीं कुछ भी न था। मैंने पूर्व में देखा वहाँ भी एक कानिस था, चट्टान से भी बडा, नुकीला और भयंकर। मैंने इधर-उधर दृष्टि दौडाई कि कहीं कोई मार्ग निकल आये। मैंने देखा चारों दिशाओं में मार्ग हमारे लिए बन्द थे। बस, यदि आशा की कोई किरण थी तो वही चट्टान और वही कानिस। उन दोनों के बीच पूरे चालीस फीट ऊपर तक एक पतली दरार चली गई थी। ऊपर जा सकने का यही एक विकल्प था, पर खतरनाक विकल्प था यह। कभी भी हम इन दोनों की लपेट में आ सकते थे, फिसल सकते थे। एक बार पाँव फिसला तो उस अथाह हिम-राशि में हमारा अता-पता तक खो जाता।

मैंने साहस बटोरा और उस दरार में घुस पडा। मैं भगवान से मनौ- तियाँ मनाता रहा कि कानिस चट्टान में ही लगा रहे। मेरी चाल धीमी थी पर मैं रुका नहीं। एक-एक क्षण का मैंने उपयोग किया। एक-एक कदम बडा मूल्यवान था। में इंच-इंच पर ऊपर की ओर बढ़ता गया। अन्त में मैं चट्टान की चोटी पर पहुँच गया और दरार से निकलकर जब ऊपर खुले हिस्से में सरकता हुआ पहुंचा तो मैं समुद्र से खींचकर किनारे पर पटकी गई विशाल मछली की तरह घडाम से जा पडा।

मैं फिर उठा। मैंने फिर कुल्हाङा संभाला, फिर सीढ़ियाँ काठीं और फिर आगे बढ़ा। पर अभी मंजिल दूर थी। पर्वत-श्रेणियाँ समाप्त नहीं हुई श्रीं। कानिस और चट्टानें दाएँ-बाएँ उभरी पङी थीं। आगे मैंने देखा कि पर्वत-श्रेणी सहसा दाहिनी ओर को मुङ गई है। शिखर किधर है, कुछ पता नथा। मैंने पर्वत-श्रेणी के मध्य से ही मार्ग निकालना उचित समझा। मैं कुल्हाङा चलाये जा रहा था, वर्फ कट-कट कर गिरती जा रही थी पर पर्वत-

श्रेणी का अन्त नहीं दीख रहा था। मैं टीले का एक हिस्सा काटता तो दूसरा दिखाई पङ जाता। कोई और अवसर होता तो मेरा उत्साह ठंडा पङ सकता था, पर यहाँ ज्यों-ज्यों नये शिखर उभरते आते त्यों-त्यों मैं अपने अंगों में अधिकाधिक स्फूति अनुभव करता जा रहा था। मुझे लग रहा था कि विजय-

श्री हमारे निकट है, वह भी बिल्कुल निकट।

सहसा सामने आशा की किरण मुझे दिखाई दी-यह थी एक ढलान। मैंने देखा कि आगे पर्वत-श्रेणी ऊपर उठने के बदले सहसा नीचे की ओर ढली हुई है। क्या यही शिखर का अन्त तो नहीं है ? मेरा दिल धड्कने लगा, पाँव और तेज हो गये, आँखें और पैनी हो गई। मैंने देखा, एवरेस्ट शिखर दूर नहीं, वह खड्ा है मेरे सामने। मैंने पहिचाना, यह वही था ! बर्फ का एक पतला कगार सीधा शिखर तक चला गया था।

काँपते हाथों से मैंने कुल्हाड्ी चलाई। कुछ आघात पड्े नहीं कि हमारे कदम एवरेस्ट शिखर पर थे।"

"माँ भवानी ने भक्त से प्राणों की दक्षिणा माँगी है बेटा"- उषा की सुनहली किरणों में अपने सिर के दूधिया, श्वेत, गीले बालों को झटकते हुए जीजाबाई ने आदेश के गम्भीर स्वर में कहा।

शिवाजी सुनकर स्तब्ध रह गये। माँ क्या कह रही है ? अभी आज प्रातः ही जब वे जागीं तो उनका मुख कमल की तरह खिला हुआ था। उन्होंने स्नान किया तब भी वे मुस्करा रही थीं और अभी कुछ क्षण पहले ही तो जब सूर्य-दर्शन के लिए दुर्ग की छत पर आने लगीं तब भी उनकी मुद्रा प्रसन्न और शांत थी। ऊपर आकर वे सहसा गंभीर क्यों हो उठीं ? तत्काल मुझे बुलावा कैसा ? प्राणों की दक्षिणा कैसी ? बलिदान कैसा ? स्वर भी तो उनका काँप रहा है। स्वभाव के विरुद्ध आज उनकी आवाज भी गंभीर एवं कठोर है। उनका यह रूप तो मैंने सदा विकट परिस्थितियों में ही देखा है। माँ भवानी हमारा कल्याण करे।

शिवाजी ने चकित किन्तु सरल भाव से निवेदन किया- "मराठों ने प्राणों को अपना समझा ही कब है, वे तो स्वयं सदा माँ भवानी के ही चरणों में अर्पण हैं; जब चाहे स्वीकार करलें। हमें तो केवल एक संकेत की प्रतीक्षा है। कहो माँ ! क्या आदेश है ? माँ भवानी ने क्यों स्मरण किया है भक्तों को?"

जीजाबाई ने चुपचाप जंगल के उस पार हाथ से संकेत कर दिया जहाँ कोंडाणा की दुर्गम पहाडी पर एक विशाल दुर्ग आकाश में अभिमान से मस्तक उठाये खडा था। सूर्य की पहली किरणों में उसका प्राचीर, बुर्ज और कंगूरे सब चमक उठे थे। उस पर लहराता ध्वज मानो हाथ हिला हिलाकर

वीरों को युद्ध की चुनौती दे रहा था। जीजाबाई ने उसी चुभती चुनौती के स्वर में कहा- "देख रहे हो, शिबा ! कोंडाणा के उस दुर्ग को और उस पर

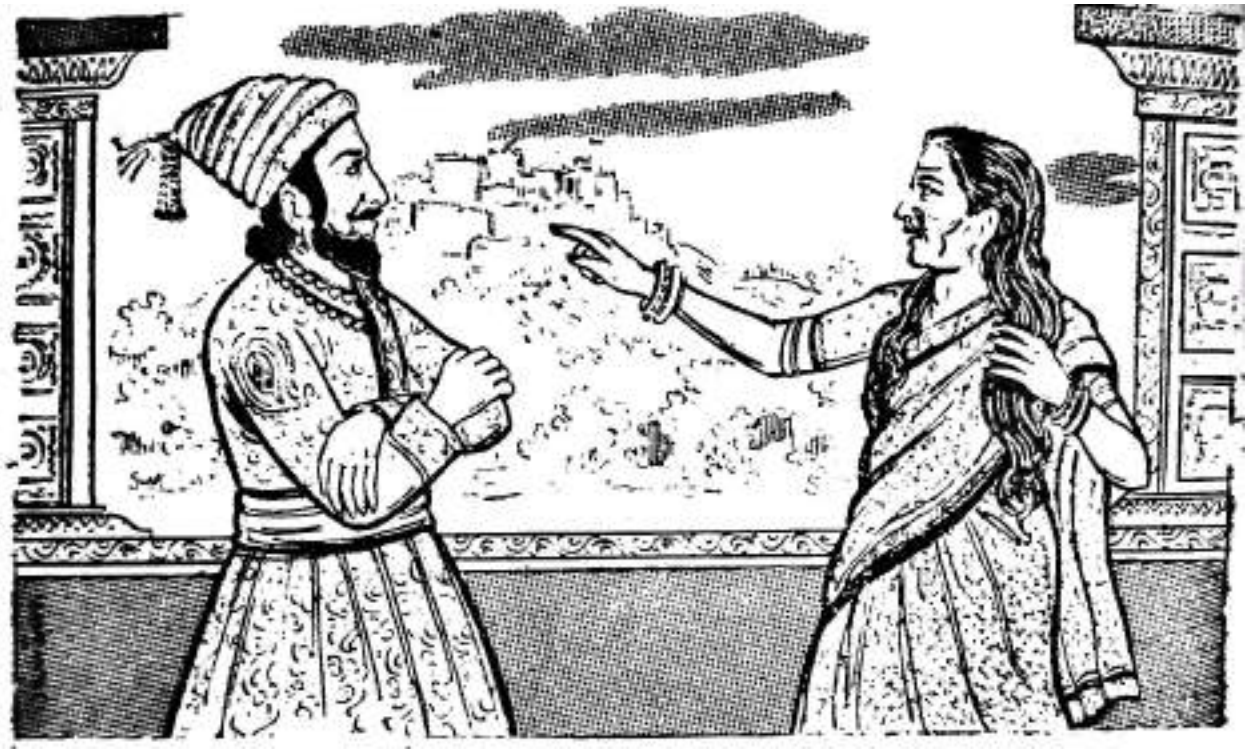

लहराते हुए मुगल ध्वज को ! मैं आदेश देती हूँ कि कल सूर्योदय होने से पहले उस पर मराठों का अधिकार हो जाना चाहिए ताकि कल इसी समय मैं उस पर केसरिया झंडे को लहराते देख सकूं।"

"कल ?" शिवाजी चौंक पडे।

"हाँ, कल। सूर्योदय से पहले, कल ।" जीजाबाई का स्वर दृढ़ से कठोर हो गया-"यह दुर्ग कभी का हमारा हो जाना चाहिए था। मराठों के इस प्रदेश में, रामगढ़ के इतने निकट, कोंडाणा जैसे महत्त्वपूर्ण किले पर अब तक शत्रु का अधिकार बने रहना, मराठों की वीरता का अपमान है बेटा ! अब उस पर तुम्हें अधिकार करना होगा ।"

"होगा, माँ, अवश्य होगा। कल सूर्य निकलने से पहले-पहले कोंडाणा की प्राचीर पर आर्य-ध्वज न लहरा दूं तो मेरा नाम शिवा नहीं।" शिवाजी ने प्रण किया ।

पर यह काम इतना सरल न था। उदयभानु जैसा अद्वितीय राजपूत

बोर वहाँ का दुर्गाध्यक्ष था - साढ़े छः फुट का पहाङ-सा लंबा-चौङा जवान, जिसकी टक्कर का उस सारे प्रदेश में कोई योद्धा न था। तलवार का वह ऐसा धनी था कि उसके जीतेजी चिङिया तक वहाँ पर नहीं फङक सकती थी। फिर दुर्ग पर आक्रमण करना तो तलवार की धार पर चलने से कहीं अधिक कठिन कार्य था, क्योंकि जिस पहाङी पर वह दुर्ग बना था वह दीवार-सी एकदम सीधी और कँटीले झाङ-झंखाङों के कारण बेहद दुर्गम थी । राजपूतों की असंख्य सेना, शस्त्रास्त्रों के अनंत भंडार और बेअंत भोजन-सामग्री के भरोसे महीनों नहीं वर्षों तक उदयभानु अपने दुर्ग की फ़ौलादी दीवारों के भीतर सुख-चैन से पङा रह सकता था। कोई शत्रु उसका बाल तक बाँका नहीं कर सकता था। यही कारण था कि आज तक मराठों को उसकी ओर आँख तक उठाने का साहस नहीं हुआ था। जो काम दिनों, महीनों और वर्षों में न हुआ उसे गिनती के चौबीस घण्टों में कर डालना कोई हँसी-ठट्ठा न था। मराठों के लिए जीवन और मृत्यु का प्रश्न था। इन कठिन क्षणों में शिवाजी ने अपनी आराध्य माँ-भवानी का स्मरण किया- "वर दे माँ ! आशिष दो, अपने भक्तों को वरदान दो कि इस कठिन अग्नि-परीक्षा में हम उत्तीर्ण हों....." सहसा प्रकाश की एक उज्ज्वल किरण शिवाजी की स्मृति में काँध गई "तानाजी !"

दिन चढ़ आया था, सूर्य सरकते-सरकते दस-बीस हाथ से भी अधिक ऊँचा आकाश में जा पहुँचा था। हवा में तपन थी और किरणों में आग-सी तीखी जलन । इनकी चिन्ता किए बिना एक मराठा घुङसवार सरपट घोङा दौङाये चला जा रहा था। अभी यहाँ, अभी वहाँ, हवा पर पाँव थे उसके । अभी मैदान के उस पार, अभी नाले के उस पार, अभी पहाङों में, अभी नदी किनारे पर। धुन में मग्न चला जा रहा था वह और सोचता जा रहा था - संनिक का जीवन भी क्या जीवन है, अशांति, युद्ध और संघर्ष। कटार उनकी संगिनी है, तलवार उनकी साथिन। आन उनका जीवन है। मरना और मारना उनका काम । मृत्यु उनका पेशा है। उनके जीवन और मृत्यु में शायद एक ही कदम का अंतर है। जीने में भी उन्हें आनन्द, मरने में भी उन्हें आनन्द ।'

इन्ही विचारों में खोया हुआ घुङसवार अपनी मंजिल पर जा पहुँचा था। यहीं तानाजी का घर था। घोङा रुक गया। घुङसवार ने हृदय के पास अपने प्राणों के समान बङी सावधानी से छिपाकर रखे एक पत्र को निकाला और घर की ओर आगे बढ़ा ।

पर यह क्या ? ये बंदनवारें कैसीं? ये झंडियाँ और ये केले के द्वार - जसे किसी बडे समारोह की तैयारियाँ हों ! संदेशहर ठिठक गया- "यह सुखद समारोह और यह कठोर संदेश !" उसके पाँव रुक गए ।

किंन्तु हृदय कठोर करके वह आगे बढ़ा ! मंगलगीतों का स्वर उसके कानों में स्पष्ट सुनाई देने लगा। घर की स्त्रियाँ सुहाग के गीत गा रही थीं। संदेशहर के हृदय की गति के साथ पाँवों की गति भी तेज़ हो गई। देखा, तानाजी का पुत्र रायबा यज्ञकुण्ड पर वधू के साथ बैठा है। लाल चूडा, मांग का सिंदूर, मंगलसूत्र, हाथों में मेंहदी, रेशमी वस्त्र - सब एक ही दृष्टि में जैसे पी गया संदेशहर। विवाह-मंडप सज चुका था, कुल-पुरोहितों की मंत्र-ध्वनि से आकाश गूंज उठा था। तानाजी पुत्र-प्रेम से विभोर होकर नव-दम्पति को आशीर्वाद देने के लिये उठकर खडे हुए ही थे, तभी संदेशहर की दृष्टि उन पर पडी और बलात् पत्रवाला उसका हाथ एक बार वापिस जेब की ओर लौट पडा। पर नहीं, तानाजी को संदेश देना ही होगा। सैनिक ने अपना कर्तव्य निभाया और लपककर शिवाजी का संदेश उनके हाथों में थमा दिया ।

तानाजी एक नज़र में सारा पत्र पी गये। माँ-भवानी ने भक्त से प्राणों की दक्षिणा मांगी है आज, अभी, इसी समय । पत्र का अंतिम वाक्य भी अभी पूरा हो न पाया था कि तानाजी लपककर विवाह-मंडप से बाहर निकल आये, जैसे रायबा के विवाह से उन्हें कोई सरोकार ही नहीं। उनका पुत्र-प्रेम, उनकी कोमलता, उनका हर्ष- सब क्षण भर में काफूर हो गये और सैनिक की कठोरता उनके रोम-रोम से उभर आई ।

रायबा ने पूछ ही तो लिया "यह क्या पिताजी ! किसका पत्र है यह ? क्या लिखा है ? कहाँ जा रहे हैं आप ?"

"कर्त्तव्य ने मुझे स्मरण किया है बेटा ! मुझे इसी क्षण रामगढ़ के लिये चल देना होगा। भगवान तुम्हें चिरंजीवी बनाये रखे।" एक ही साँस में तानाजी सब कुछ कह गये और घोडे की ओर लपके ।

"माँ-भवानी का प्रसाद अकेले ही अकेले लूट लेना चाहते हो ?" तानाजी के भाई लुरियाजी ने कटाक्ष किया "छोटे भाई का भी उसमें आधा हिस्सा है। अपना भाग प्राप्त किये बिना मैं आपको यहाँ से एक कदम भी आगे बढ़ने न दूंगा ।"

"और पिता की संपत्ति में पुत्र का कोई दायभाग न होगा?" रायबा ने

विवाह-मंडप से सहसा कूदकर तानाजी के चरण पकङ लिए- "पिताजी, आज आप निश्चय कीजिए, माँ भवानी के चरणों में आज मुझे ही अपना तुच्छ उपहार अर्पण करने की आज्ञा दीजिए, ऐसी मंगल घङी में फिर ऐसा सुयोग कहां प्राप्त होगा ?"

तब तक 'हर हर महादेव' की जय-ध्वनि से सारा मंडप गूंज उठा। एक हजार मावली सरदार तानाजी के सम्मुख कमर बाँधे, हाथ जोङे खङे थे। समय अधिक नहीं था, प्रतीक्षा का एक-एक क्षण मूल्यवान था। तानाजी ने पिता से अधिक एक सेनापति के अधिकार से रायबा को आदेश दिया- "जाओ, इस समय तुम्हारा कर्त्तव्य यज्ञ वेदी पर तुम्हें बुला रहा है, जाकर कुल-पुरोहित की आज्ञा का पालन करो और लुरियाजी ! आप हमारे इन स्वामिभक्त सरदारों को लेकर शीघ्र से शीघ्र रामगढ़ पहुँचने का यत्न करें। वहां छोटे पहाङी मार्ग से जाना होगा। अच्छा, मैं चला।"

अगले ही क्षण तानाजी उस मराठा संदेशहर के साथ बस्ती से ओझल हो गये। जहाँ दो मिनट पहले शहनाई बज रही थी वहीं अब नरसिंहा हुँकार उठा। चारणों ने मंगल-पाठ पढ़ा। भाटों ने वीर-गाथाएँ गाई। ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिये, महात्माओं ने विजय-कामना की और सैनिकों ने शान के लिये मर मिटने की प्रतिज्ञा की। लुरियाजी के नेतृत्व में एक हजार मावली घुङसवारों की टुकङी गाँव के गली-मुहल्लों से धङ-धङाती हुई गुजरने लगी। घोङों की टापों से गगन-मंडल गूंज उठा। धूल के बादल दूर पहाङियों तक छा गये। सेना अब दूर, और दूर बहुत दूर जा चुकी थी। कुलवधुएँ ऊँचे चढ़-चढ़ अपने बहादुर पतियों को निहार रही थीं। माताओं की आँखों में पुत्र- स्नेह छलछला उठा था। मावलियों के आँखों से ओझल हो जाने के बाद वे देर तक उनके पाँवों से उङी हुई धूल को ही आकाश में देखती रहीं।

(३)

रामगढ़ में छोटा-सा मंगल समारोह हुआ। जीजाबाई ने अपने हाथों से तानाजी का तिलक किया। शिवाजी ने अपने हाथों से एक-एक मावली सैनिक को शस्त्र धारण करवाया। तानाजी स्वयं टुकङी के सबसे आगे हो- कर चले।

रात्रि हो गई थी। चारों ओर अंधकार छाया था और आकाश में काले बादल। रास्ता दिखाई तक न देता था। जब सारी दुनिया की पलकें नींद से बोझिल झुकी हिमताई जा रही थी, उस समय एक हजार मावली सरदार शस्त्र उठाये कोंडाणा की ओर बढ़े चले जा रहे थे, दवे पाँव, धीरे-

धीरे, बिल्ली की चाल से । हाथ को हाथ न सूझता था। मार्ग से भटकने का भय था। रह-रह कर बादलों में बिजली चमक-चमक कर सैनिकों का पथ-प्रदर्शन करती जाती थी ।

"बस, यहीं रुक जाओ।" तानाजी ने घने अंधकार में सेना को संकेत किया। फिर फुसफुसाहट के स्वर में उन्होंने सिपाहियों को संक्षेप से सारी स्थिति समझा दी- "यहाँ से हमें कोंडाणा की पहाडी तक रंगकर चलना होगा। शत्रु को कानों-कान आहट भर न आनी चाहिये । झुक झुक कर, झाडियों के पीछे छुप-छुप कर आगे बढ़ो। पहाडी बहुत सीधी है, जडें पकड- पकड कर ऊपर बढ़ो । पर सावधान, तनिक भी आहट न होने पाये ! कुत्ते के कान होते हैं पहरेदारों के !"

किले पर विजय पाने का एक ही रास्ता था। दुर्ग के एकांत मार्ग पर फाँद लगाकर कुछ सरदार ऊपर चढ़ जाएँ और अंदर उतर कर किले का द्वार खोल दें। योजना सरल थी पर उस पार आकस्मिक मृत्यु को गले लगाना था। तानाजी ने सेना को दो भागों में बाँट दिया। वे स्वयं पाँच सैनिकों को साथ लेकर किले के प्राचीर पर किसी एकांत के कोने से चढ़ने का यत्न करने लगे और शेष पाँच सौ मावलियों को लुरियाजी के नेतृत्व में दुर्ग के मुख्य फाटक पर छोडकर आदेश दे गये कि आप लोग यहीं प्रतीक्षा करें और फाटक खुलते ही धावा बोल दें।

दीवार पर गोह चिपकाने का आविष्कार पहले-पहल साहू की दीवार फाँदने के लिए किसी उचक्के ने ही किया होगा। आज उचक्कों को घर से निकालने के लिये उसी अस्त्र का प्रयोग घर के मालिक कर रहे हैं। तानाजी ने प्राचीर के पिछवाडे एक सुनसान कोना ढूंढ निकाला। वह था भी कुछ नीचा । रस्सी बाँधकर गोह इस अन्दाज से उछाली गई कि पहली बार में ही वह मुंडेर पर अपने फौलादी पंजों से चिपक गई। यह एक अच्छा शकुन था। सरदारों में प्रसन्नता की एक लहर दौड गई। बस फिर क्या था, गोह से लटकती रस्सी पकड कर पहले एक इकहा जवान ऊपर पहुँचा। ऊपर पहुँच कर उसने एक छोटा मजबूत रस्सा फेंका। एक-एक करके उस घने अंधकार में अनेकों मावली वीर ऊपर पहुँचने लगे ।

नीचे खडे सिपाहियों का उत्साह आपे में नहीं समा रहा था। अपनी शांति को वे रोक नहीं पा रहे थे। वे जल्दी से जल्दी ऊपर पहुँचने को उतावले हो रहे थे ताकि मौत से खिलवाड कर सकें, आग से खुलकर खेल

सकें। उनकी बाँहें फड-फड फड्क रही थीं। प्रत्येक को यही भय था कि कहीं आज की युद्ध-क्रीडा से वह वंचित न रह जाये। उसी होड में एक अकेले रस्से पर अनेकानेक मावली सरदार एक साथ लपक पडे। चिर्रर्रर्र ...म... चिरं । अभी आधे सिपाही भी ऊपर पहुँच न पाये थे कि रस्सा चिरमिरा कर टूट गया । नीचे के सिपाही नीचे और ऊपर के ऊपर रह गये। हाँ, तानाजी अवश्य ऊपर चढ़ गये थे ।

रस्सी टूट गई पर तानाजी का साहस न टूटा। वे अपने मुट्ठी भर सरदारों को लेकर शत्रु पर टूट पडे। सूर्यभानु उन्हें ऊपर देखकर चकपका गया। आँखों में नींद भरी थी। पहले तो उसने समझा वे हमारे ही सैनिक हैं, पर जब ललकार पडी तो उसके हाथों के तोते उड गए। खतरे का नगाडा बजा दिया गया, चिल्ला-चिल्लाकर बहुतों को जगाया गया । कई तो जगाने से पहले ही सदा के लिए सो चुके थे। कुछ उठे पर सँभल न सके । तानाजी ने स्वयं सैंकडों का सफ़ाया कर दिया था ।

पर देखते ही देखते भयंकर भिडंत हो गई। इधर मराठे थे तो उधर राजपूत । कोई किसी से कम न था। राजपूत भी आवेश को रोक न सके । तलवारें खींच लीं और ढाल सँभाले हुए उठ खडे हुए। भयंकर युद्ध छिड गया। लहू की नदियाँ बह निकलीं, लाशों के ढेर लग गये। ऐसा लगा कि महाकाली का खप्पर आज रक्त से भर जाएगा। उसे आज राजपूतों का लहू मिला जी भर पीने को । आज वह बहुत दिनों बाद नर-मुण्डों की मालाएँ गले में पहनेगी। आज प्रत्येक सैनिक का, प्रत्येक सरदार का, तथा प्रत्येक का आने से प्यार था। वे मरने आये थे, लौटकर जाने के लिए नहीं। इसलिए दोनों ओर के सिपाही दिल खोलकर लडे। कुछ देर तक अंधाधुन्ध मार-काट मची रही। कौन मरा, किसी को पहचान नहीं। कौन कटा, किसी को पता नहीं। अँधेरे में बस 'मारो-मारो, काटो-काटो' के हुंकारों से दुर्ग की प्राचीरें तक काँप उठीं ।

शीघ्र ही राजपूतों के पाँव उखडने लगे। मावलियों की तेज़ मार के सामने वे न टिक सके । किन्तु भागकर जाएँ भी तो कहाँ ? चारों ओर से तो वे घिरे थे, जिधर जाते मार खाते। गाजर-मूली की तरह वे कटने लगे । मावलियों के हौसले बुलन्द हो चुके थे। विजय के उन्माद में वे उछल- उछल कर चारों ओर से राजपूतों का सफ़ाया कर रहे थे। लगा, यदि यही चक्र चलता रहा तो आज राजपूतों और मुगलों का बीज भी कोंडाणा में

दोष न रहेगा। अब तो तानाजी का ही वेग सँभालना मुगल सेना के लिए दूभर हो गया था। मुगल सेना के दाईं ओर एक मस्त हाथी सूंड हिला रहा था। किसी भी सैनिक को उधर जाने की हिम्मत न पङती थी। तानाजी ने तलवार का एक ही ऐसा भयंकर वार किया कि हाथी की सूंड कटकर पीछे जा पङी। हाथी चिघाङ मारता हुआ पीछे को लौट पङा। वह जिधर निकल जाता उधर ही भगदङ मच जाती। उसने अपनी ही सेना को पाँवों तले कुचल डाला। मुगल सेना आगे ही हिम्मत हारे बैठी थी, हाथी के उत्पात से तो यह सचमुच भाग खङी हुई।

तभी सेना को घेरता हुआ उदयभानु आगे बढ़ा, जैसे बिजली बादलों | को फाङती हुई निकल जाती है। उसके आते ही राजपूत और मुगल सिपाहियों में नये रक्त का संचार हो गया। वे भागते हुए मुङ पङे, मरते हुए जी उठे। उदयभानु क्या आया सेना में एक नई जान आ गई। वह आते हो तानाजी का रास्ता रोक कर खङा हो गया और ललकार कर बोला- "तानाजी ! सुना था कि तुम बङे बहादुर हो पर आज अपनी आँखों से देख लिया कि तुम दीवार में सेंध लगाकर चोरी करना ही जानते हो, लङना नहीं।"

तानाजी को बातों की फुर्सत कहाँ, मुर्गे की बांग से पहले-पहले वे मुगलों के एक-एक सिपाही को रण-शय्या पर सुला देने पर उतारू थे। उनकी तलवार चलती ही रही और शत्रु-सेना घटती ही रही।

उदयभानु के क्रोध का पारावार न रहा। उसने कङक कर अपने सैनिकों को आदेश दिया- "इसको जीता पकङ लो !"

यह सुनकर तानाजी हँसी न रोक सके और बोले- "शेर कभी जीते नहीं पकङे जाते, उदयभानु ! तुम्हें शौक हो तो आओ आज दो-दो हाथ कर लें, देखें कौन किसे पकङता है ?"

उदयभानु- "मैं अपने से निर्बल पर हाथ उठाना वीरता का अपमान समझता हूँ, इसलिए पहले तुम्हीं वार करो।"

तानाजी- "नहीं पहल तुम्हारी। क्योंकि दूज के लिए शायद तुम जीवित ही न बचो।"

उदयभानु -"अच्छा, तेरी यह हिम्मत, तो ले सँभल।"

उसने तलवार खींच ली और तानाजी पर एक भरपूर वार किया। तानाजी की आँखें लाल हो गई। मुगलों के प्रति उनका पुराना क्रोध अपनी

पराकाष्ठा को पहुँच गया और दाँत पीसते हुए उदयभानु पर पिल पडे। ऊँची, लम्बी, भारी-भरकम तलवार बिजली की तरह उदयभानु पर गिरने लगी। एक दूसरे पर घातक वार होने लगे। तानाजी आज सचमुच जिस वेग से लड रहे थे उस वेग से वे शायद पहले कभी प्रकट न हुए थे। उदय- भानु को वे आक्रमण का अवसर ही न देते थे। रक्षात्मक युद्ध करते-करते उसकी ढाल भी ढीली पड गई। तानाजी की भयंकरता क्षण-प्रतिक्षण बढ़ती जाती थी। उन्होंने तलवार का एक अचूक निशाना लगाया, उदयभानु की ढाल दो टुकडे होकर गिर पडी। उदयभानु उछल पडा। उसने भाले का पहला ही वार इस तेजी से किया कि वह तानाजी की पसलियों को कतरता हुआ निकल गया। अब दोनों में तुमुल युद्ध छिड गया। उदयभानु हाथी सा भीमकाय था तो तानाजी सिंह से प्रचंड। आज उनकी कुश्ती सचमुच देखने योग्य थी। जब-जब तानाजी का वार ठीक निशाने पर पडता तब-तब मावली वीर हर्ष से पागल हो उठते, पर जब उदयभानु गहरा घाव कर जाता तो उनके चेहरे मुरझा जाते।

लडते-लडते तानाजी बहुत शिथिल पड गये थे। उन्हें काफ़ी चोटें लगी थीं। घावों से रक्त के फुव्वारे छूट रहे थे पर तलवार चलानी बन्द न हुई थी। उदयभानु ने बरछी का दूसरा वार किया। उसकी मार को ताना- जी का जर्जर शरीर न सह सका और वे धरती पर लुढ़क गये। अपनी सफलता पर उदयभानु ने भयंकर गर्जना की। मावली सैनिकों का साहस टूट चला। उनके पाँव उखड चले।

पर यह क्या ? तानाजी एकाएक फिर उठ खडे हुए, उन्होंने फिर तल- वार संभाली। फिर वे उछले और उदयभानु पर उन्होंने अपने जीवनकाल का सबसे गहरा दाँव मारा, जो उनका सबसे अंतिम दाँव भी था। वह कटे पेड की तरह धडाम से धरती पर आ गिरा। पर उदयभानु का मारा भी आज तक कभी युद्धक्षेत्र से जीवित नहीं लौटा था। तानाजी भी धराशायी हो गये। दोनों वीर एक साथ नीचे गिरे, ऊपर कभी न उठने के लिए।

उधर मावली सैनिकों ने दुर्ग के द्वार खोल दिये। तोरण के खुलते ही लुरियाजी अपने पाँच सौ ताजा-दम सैनिकों के साथ दुर्ग में घस पडे। किले में जो सबसे अमूल्य सम्पत्ति उनके हाथ लगी वह थी विजय और तानाजी की अन्तिम कहानी।

तब तक आकाश में सूर्य की गुलाबी किरणें भी प्रकट हो आई। जीजाबाई भी स्नान करके रामगढ़ की छत पर सूर्य-दर्शन के लिये उपस्थित थीं। उन्होंने अपने दूधिया श्वेत गीले बालों को झटकते हुए देखा कि कोंडाणा पर केसरिया ध्वज लहरा उठा है।

शिवाजी ने उपस्थित होकर निवेदन किया- "माँ-भवानी ने भक्त के प्राणों की दक्षिणा स्वीकार करली है माँ ! सिंह की भाँति वीरता दिखाकर आज तानाजी धन्य हो गये हैं। अब हम उन्हें तो न पा सकेंगे पर याद में कोंडाणा का दुर्ग आज से सिंहगढ़ कहलाएगा।"